रामाश्रम सत्संग प्रकाशन

संत = प्रसादी

(भाग 6)

परमसंत डा० करतार सिंह साहब

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाज़ियाबाद (उ० प्र०)

Scanned by CamScanner

प्रकाशक :
अध्यक्ष एवं आचार्य रामाश्रम सत्संग (रजि0)
गाज़ियाबाद (उत्तर प्रदेश)

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण 1000 (1999)
मूल्य : दस रुपये

प्राप्ति स्थान :
व्यवस्थापक, राम-संदेश पत्रिका
9- रामाकृष्णा कॉलोनी, गाज़ियाबाद (उ0 प्र0)
2-बी, नीलगिरि-3, सैक्टर-34, नौएडा, 201307

मुदक :
गायत्री ऑफ़सैट प्रैस, ए-66,सैक्टर-2,नौएडा-201301

Scanned by CamScanner

संत प्रसादी (भाग-6)

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठांक
1.	आध्यात्मिकता का आधार	5
2	मौन साधना का स्वरूप	9
3.	वास्तविक स्वरूप दर्शन का उपाय	15
4.	परमार्थ से परमात्मा की प्राप्ति	19
5.	विवेक और वैराग्य का अभ्यास	24
6.	ईश्वरीय गुणों का महत्त्व	32
7.	सद्‌गुणों को अपनाना सीखें	42
8.	स्वनिरीक्षण से सुधार और शांति	49
9.	अहंकार त्यागें दीन सेवक बनें	59
10.	गुरुकृपा हेतु निर्मल होना होगा	66
11.	राग-द्वेष तजकर सबसे प्रेम करें	70
12.	सच्चा पश्चात्ताप और प्रार्थना	74
13.	प्रभु प्रेम पाने के कुछ साधन	81
14.	सभी में एक 'वही' रूप देखें	88
15.	विश्व शांति का सामयिक संदेश	94

Scanned by CamScanner

सम्पादकीय निवेदन

सत-संतगुरु मानव समाज के कल्याण के लिये उन्हीं के समान साधारण-सामान्य रूप में जीवन-लीला करने आते रहते हैं। कुछ भाग्यवान लोगों को उस सच्चिदानंद प्रभु की असीम सत्ता का ज्ञान, आभास एवं अनुभूति कराने के उद्देश्य से वे निरंतर अपनी कृपा-वृष्टि करते रहते हैं। और यह 'प्रसादी' मनुष्य की कर्म इन्द्रियों की सीमित क्षमताओं अर्थात शब्द स्पर्श रूप रस गंध के माध्यम से भी प्राप्त करा देते हैं।

गुरुजनों के मुखारविन्द से निकले मधुर 'शब्द,' चरण छूने या सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखने से 'स्पर्श', मनमोहिनी आकर्षक छवि के दर्शन द्वारा 'रूप' और अपने सत्संग के 'रस' तथा सान्निध्य की 'सुगंध' - जैसे माध्यमों द्वारा साधकों का उद्धार करते रहते हैं। इन सब में उनकी मुखरित 'प्रवचन - वाणी का प्रसाद' अधिक स्थायी हो सकता है। यदि उसे सँजो लिया जाये तो कालांतर में भी जिज्ञासुओं के लिये प्रेरक और लाभदायक बना रहता है।

परमसंत पूज्य डा. करतारसिंह जी की अनुमति से उन्हीं के कुछ प्रवचनों की अमूल्य निधि को 'संत प्रसादी' के छठे भाग में समाहित करने का सौभाग्य सेवक को मिला है। इस खंड में आंतरिक साधना का रहस्य एवं महत्त्व के साथ साधक के आचरण के सुधार-विषयक उपदेशों को लिया गया है।

कहीं-कहीं भाषा में परिवर्त्तन की छूट लेने की धृष्टता हेतु क्षमा वांछित है।

अनंत आभार सहित पुस्तक प्रस्तुत करते हुए आशा है कि हम सत्संगी साधक इसका पूरा लाभ उठायेंगे।

विनीत - सतीश वर्मा

दीपावली, 1999

Scanned by CamScanner

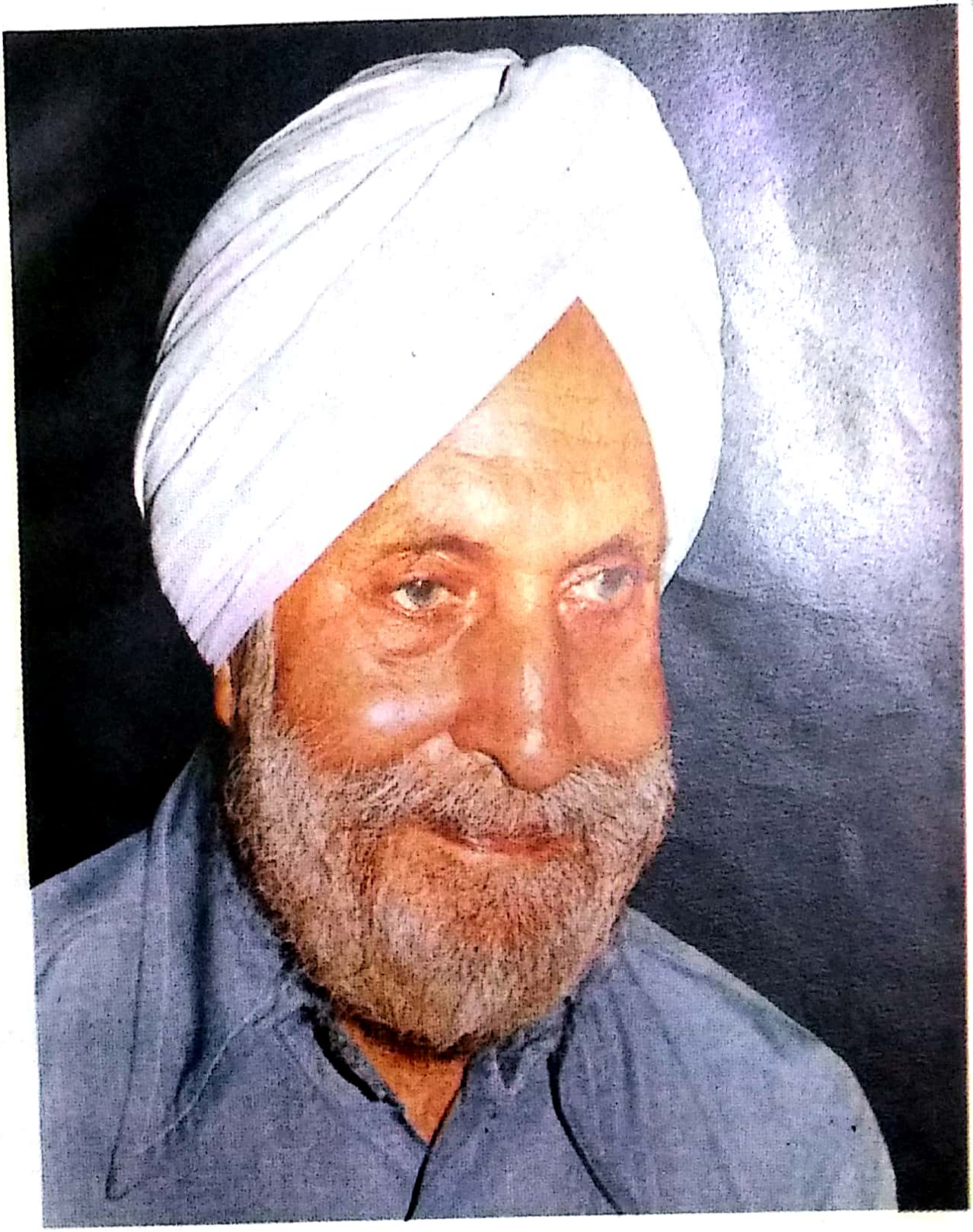

"अहंकार से प्रभु नहीं मिलते। चाहे कोई भी
साधन करिये, दीनता को तो अपनाना ही होगा।"

परमसंत डा. करतार सिंह साहब
(जन्म 13 जून 1912)

Scanned by CamScanner

आध्यात्मिकता का आधार

ईश्वरीय कृपा की धार

मानव जीवन का सबसे प्रमुख उद्देश्य है : ईश्वर प्राप्ति के अर्थात, ईश्वर के स्वरूप से साक्षात्कार और आत्मा का परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाना। इसी परम ध्येय के लिये युग-युगान्तर से महान विभूतियों ने आध्यात्मिकता के पथ का मार्ग-दर्शन कराया है, अंतर की साधना करने का महत्त्व समझाया है।

परमात्मा की यह विशेष कृपा है कि उसकी कृपा की धार (को भिन्न-भिन्न मतों में विविध नामों से जैसे फ़ैज़, अमृत, Grace या भगवत-प्रसादी इत्यादि नामों से जाना जाता है, जो निरन्तर प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक कण पर बिना किसी भेदभाव के अविरल बरसती रहती है! इसकी व्याख्या अपनी-अपनी गति- मति से विभिन्न महापुरुषों ने ज्ञान-वृष्टि, प्रेम वृष्टि या अमृत-वृष्टि इत्यादि कहकर की है! परन्तु 'झिम-झिम बरसे अमृत धारा' इस अनुभव को पूर्णतः प्रकट करने के लिये योग्य शब्दों की सच्ची, पूरी अभिव्यक्ति का फिर भी अभाव ही रहा है - गूंगे के गुड़ की तरह!

आत्मिक या आंतरिक साधना में कभी-कभी ऐसे क्षण आ जाते हैं जब जिज्ञासु यह समझता है कि किसी बाधा के परिणामस्वरूप उसे ईश्वर कृपा का आनंद मिल नहीं रहा है अथवा उसकी आन्तरिक चढ़ाई नहीं हो रही है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है, कुछ और है। इसी विषय में पूज्य लालाजी महाराज (परम संत महात्मा रामचन्द्र जी) ने लिखा है कि ईश्वर की ओर से यह प्रेम की धार बंद हो जाये तो समस्त

Scanned by CamScanner

सृष्टि का विनाश हो जायेगा। परम पिता परमात्मा सर्व-व्यापक हैं। विज्ञान के विद्यार्थी भी समझते हैं कि वैश्वी शक्ति (Cosmic Energy) की तुलना मे आत्मिक शक्ति (Divine or Spiritual Power) सर्व व्यापक एवं अधिक सूक्ष्म, होने के साथ ही महानतम है; हर कण में - 'ज़र्रे-ज़र्रे और पत्ते-पत्ते में' समाई रहती है।

सूक्ष्म रूप में, परमात्मा के ब्रह्माण्डों की विराट सृष्टि की विशालता के सृजन की तो कोई सीमा है ही नहीं। यह जो अपनी पृथ्वी और सौरमंडल के नक्षत्रों की सृष्टि हम देख सकते हैं ऐसी कई लाखों-करोड़ों सृष्टियां हैं जिन्हें देखना-जानना तो क्या, उनका कोई अनुमान तक नहीं लगाया जा सकता। उन सभी को - सूक्ष्म एवं सर्व व्यापक होने के कारण जो धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है ऐसी आत्मिक शक्ति या आत्म-प्रसादी ही, सारी सृष्टियों का पालन पोषण कर रही है।

बुद्धिजीवियों के मन में प्रश्न उठते हैं कि इस आत्मिक शक्ति के सर्व व्यापक होते हुए भी आनंद का अभाव अथवा चित्त में चंचलता और अशांति क्यों आती है? सुख-दुख, पाप-पुण्य क्यों होते हैं - जब कि प्रभु हमारे भीतर रोम-रोम में रमे हुए और बाहर भी सर्वत्र विद्यमान हैं? यह भी विचारने, मनन करने योग्य प्रश्न हैं।

मान्यता यही है कि चिरन्तन अस्तित्त्व तो मात्र आत्मा या परमात्मा का ही है। शेष जो भी सुख-दुख भासते हैं या पाप-पुण्य जो भी होते हैं वह क्षणिक, अस्थायी, नश्वर एवं भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं! इसी विचार पर ज्ञानी ऋषि मुनियों ने अपने अपने अनुभवों और खोजों या अनुसंधानों के आधार पर, सार तत्त्वों को समाहित करके अनेकों शास्त्रों की रचनाएं कीं। उनकी आस्था है कि उसी दैवी शक्ति का आनंद का प्रवाह अविरल एवं चिरन्तन रूप में सर्वत्र बह रहा है। इस गंग प्रवाह में आनंद ही आनंद है, शक्ति ही शक्ति है।

Scanned by CamScanner

परन्तु कुछ ज्ञानियों, मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि यह भ्रम है। उनके विचार में तो वह मन की वृत्तियां हैं जिनके लिये मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है। इसे पिछले संस्कारों का परिणाण मानते हैं। कुछ और विद्वानों की मान्यता है कि, इस संसार के रंगमंच पर ईश्वर की जो लीला हो रही है, ईश्वर एक निर्देशक की तरह अपनी इस अभिनय क्रीड़ा में प्रत्येक पात्र को पात्रतानुसार दुःख-सुख देते हैं, पुनीत या पतित का अभिनय करवाते हैं। पृष्ठ भूमि में जो संचालक या निर्देशक विद्यमान रहता है, वह आत्मा या परमात्मा ही है।

इसकी विभिन्न तरीकों से व्याख्या करने का प्रयास किया जाता रहा है। मनुष्य अपनी अनावश्यक आसक्ति के कारण अभिनय को ही सत्य समझ कर वास्तविक स्वरूप के सत्य को भुलाकर बाहरी माया जाल में फंस गया है। वह अपने ही पागलपन में, सुख-दुःख उठाता है, उन्हीं में उलझा रहता है।

अब ऐसी विचारणीय स्थिति में प्रश्न उठता है कि आखिर हम करें क्या? हमारे सही, उपयोगी और व्यवहारिक कर्त्तव्य का आधार क्या है।? पूज्य गुरुदेव का कथन है कि हमारे दुःख सुख का मुख्य कारण हमारे द्वारा निरन्तर बरस रही फ़ैज़ की अर्थात परमात्मा की कृपा धार से अपने आपको विमुख कर लेना है! जब तक हम इस अमृत वृष्टि के संमुख रहते हैं, आत्मिक सुख में लीन होते हैं परन्तु इस वृष्टि से पृथक होते ही हम अहंकार के स्थान पर अथवा माया के साम्राज्य में आ जाते हैं; परिणाम स्वरूप दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों को भोगते रहते हैं।

इन तापों से बचने के लिये, अविरल हो रही ईश्वर कृपा की धार से समरस होना ही वांछनीय है आत्मिक आनंद इन सभी से परे है उसमें किसी प्रकार की रुकावट या बाधा नहीं है।

Scanned by CamScanner

सभी संत समागमों में जो लोग अपनी तवज्जोह, यानी सुरत को, इस फ़ैज़ अर्थात - अमृत धारा को, ग्रहण करने में सरलता से लगाते हैं उनका संबंध इस अमृत धारा से जुड़ जाता है। इस अमृत धारा में अव्यक्त रूप में छिपे सूक्ष्म ईश्वरीय गुण हमारे शरीर के रोम-रोम में प्रवेश कर के अद्भुत परिवर्तन लाते हैं। हमारा चित्त भी धीरे-धीरे निर्मल होता जाता है।

इस अमृत को हम जितना अधिकाधिक जज़्ब कर लेंगे, आत्मसात कर पायेंगे, उतना ही हम निर्मल होते जायेंगे, हमारे संस्कार समाप्त होते जायेंगे। ये ही हमारे भीतर में 'गंगा स्नान' है। जो व्यक्ति इस प्रसादी को ग्रहण कर लेता है वो स्वयं ही फ़ैज़ या नाम रूप अर्थात अमृत रूप बन जाता है। उसमें और प्रभू में अंतर या दूरी कम होने लगती है। जिस नामी से यह नाम की धारा प्रवाहित हो रही है अर्थात इसके वास्तविक स्त्रोत परमात्मा में और उसमें धीरे-धीरे कोई भेदभाव नहीं रहता।

देखा जाये तो यह बड़ा ही सरल साधन है। परन्तु सरल एवं तकनीक रहित होने के कारण लोगों को प्रभावित नहीं करता- अधिक जँचता नही है। लोग शब्द रस, कर्ण रस तथा अन्य रसों को चाहते हैं। गुरुजन सुहाने वाली वार्ताएँ करें, मतलब यह है कि बिना किसी स्थूल आधार के उन्हें संतुष्टि नहीं होती। परिणाम यह होता है कि वह असली सूक्ष्म से दूर होते जाते हैं।

वास्तव में ऐसी दशा में साधक को करना केवल यही है कि मानव शरीर को इसी आंतरिक अनुभूति की प्राप्ति करना सिखाये और उसके लिये नियमित अभ्यास और निरन्तर प्रयास करना ही अध्यात्म का आधार है।

Scanned by CamScanner

मौन साधना का स्वरूप

आदिकाल से जितने भी धर्म हुए है, जितनी भी महापुरुषों ने पूजा की पद्धतियाँ अपनाने का आदेश दिया है, प्रायः उन सबका अंतिम चरण मौन है। प्रभु सत्य हैं। मौन–साधना द्वारा हम उसी सत्यस्वरूप परमात्मा का अंश, हमारी आत्मा को अवसर देते हैं कि वह' हमारे रोम–रोम में प्रकाशित हो जायें अर्थात हमारी समीपता और संयोग की अनुभूति उस परमात्मा के साथ हो जाये।

प्रगाढ़ निद्रा या सुषुप्ति में हमारा शरीर निश्क्रिय रहता है; मनकी चंचलता यानी संकल्प–विकल्प नहीं होते; बुद्धि द्वन्दों से रहित, मुक्त होती है। प्रगाढ़ निद्रा जैसी स्थिति ही मौन की स्थिति होती है।

मौन साधना करने के लिए सरल और अहज आसन में निश्चल शरीर, शांत मन और स्थिर बुद्धि से बैठने पर हल्केपन की ऐसी स्थिति आ जायेगी, मानो कोई कपड़ा खूंटी पर टंगा हो – वह अपने बल पर नहीं खड़ा होता है। ऐसी स्थिति में, परमात्मा की कृपा की वृष्टि का भान होता है, इस वृष्टि से हमारा शरीर, मन व आत्मा– सम–रस हो जाते हैं। ईश्वर तो अनन्त आनंद स्वरूप है; हमारी दशा भी कुछ देर के लिए आनंद रूप हो जायेगी।

पर, सामान्यतः ऐसे आनंद की अनुभूति होती क्यों नहीं? इसका कारण मन की चंचलता है। बिना मन की चंचलता को त्यागे ईश्वर का सामीप्य नहीं मिल सकता। होता ये है कि वास्तव में हम अपने मन का संग करते हैं,

Scanned by CamScanner

परमात्मा या गुरु का - सत् का - संग नहीं करते। गुरु के संग और प्रभु के संग में कोई अंतर नहीं है। गुरु भी ईश्वर में लय होकर आपकी सेवा में बैठता है। वह कुछ नहीं करता - उसका शरीर अपने रोम-रोम द्वारा परमपिता परमात्मा के प्रेम की किरणें चारों ओर फैलाता है।

गुरु न भी हो तब भी ईश्वर की कृपा सब पर हर समय एक जैसी बरसती रहती है। अन्तर केवल यह है कि गुरु का शरीर साधना करते-करते इतना निर्मल और संवेदनशील बन जाता है कि गुरु के शरीर के द्वारा परमात्मा की कृपा की रश्मियाँ जो आप तक पहुँचती हैं वे कुछ अधिक शक्ति, अधिक तेज और वेग लिये हुई होती हैं। उदाहरण के लिये आतशी शीशे पर यदि सूर्य की किरणें पड़ें तो उसके नीचे रखा काला कपड़ा जल उठता है।

आपके मौजूद गुरु हैं तो ठीक है - अच्छा है। यदि नहीं हैं तो भी आपका सीधा सम्पर्क प्रभु से हो सकता है। बस शर्त यही है कि व्यक्ति मन की चंचलता और बुद्धि की चतुराई से मुक्त हो जाये। इस स्थिति में परमात्मा के साथ समीपता प्रारम्भ हो जाती है। और इस कैफ़ियत को आप बढ़ाते चले जायेंगे तो धीरे-धीरे एक दिन ऐसा आ जायेगा कि आप में और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रहेगा। पर यह काम जल्दी का नहीं - धैर्य का है। एक दिन में आत्मिक मौन में स्थिरता नहीं प्राप्त होती - समय लगता है। अभ्यास करते रहें, भले ही कई वर्ष लग जायें।

मौन की अवस्था को स्थिर बनाने के लिये नियमित

Scanned by CamScanner

उपासना का त्याग नहीं करना चाहिये। मौन की साधना के लिये पहले मनको कोमल बनाना, संवेदनशीन बनाना है ताकि प्रभु की ओर से जो प्रसादी आ रही है उसे साधक ग्रहण करने योग्य हो सके। प्रभु के प्रति भक्ति तो भाव, भावुकता और उपासना से बढ़ेगी। निस्वार्थ सेवा तथा शुभ कार्य एवं सात्विक जीवन भी मौन साधना में सहायक होते हैं।

उपासना के समय शुरु-शुरु में प्रभु की महिमा का गुणगान, स्तुति-वंदना आदि करना, भजन व पुस्तकें पढ़ना भी सहायक होते हैं। भक्ति किसी भी तरह की, किसी भी भाव की हो, चाहे प्रेमा भक्ति हो जैसी चैतन्य महाप्रभु करते थे। वे तो भक्ति-भाव में नृत्य गान करते-करते इतने विभोर हो जाते थे कि उनका तन-मन और समस्त चेतना भगवान से तद्रूप हो जाती थी, ईश्वरमयी बन जाती थी। भक्ति की चरम-सीमा या अंतिम स्थिति परिणति आत्मा के 'मौन' की दशा ही है।

ध्यान में बैठते समय मन चंचलता करेगा, बुद्धि भी तर्क-वितर्क करेगी। इनसे मुक्त होने के लिये या तो प्रेम-भक्ति का सहारा लें या ज्ञान-साधना का। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो आपका न तो मन स्थिर हो पायेगा न ही आपको आनंद की अनुभूति होगी।

मौन-साधना के समय कुछ सावधानियाँ भी बरतनी आवश्यक हैं। जब मन में क्रोध हो, किसी के प्रति शत्रुता या बदले की भावना हो, कोई बुरे विचार आ रहे हों या हीन भाव सता रहे हों तो मौन का अभ्यास न करें क्योंकि ऐसा करने से इन बुराइयों को दृढ़ता मिलेगी। जब तक मन निर्मल

Scanned by CamScanner

जाये, हर प्रकार के विचारों से मुक्त न हो जाये, मौन साधना न करें।

इसी प्रकार मौन साधना करने के पश्चात् तुरन्त ही दुनिया के कामों में नहीं लगना चाहिये। पाँच-दस मिनट एकान्त में रहें। लोग साधना समाप्त होते ही बातों में लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि जो कुछ प्राप्ति हुई होती है, वह समाप्त हो जाती है।

मौन की साधना में बैठने से पूर्व हम 'अधिकारी' बनें। जब तक अधिकार नहीं बनता, भजन पढ़िये, रामायण आदि ग्रथों का पाठ करिये, संतो की अमृत वाणी पढ़ें, सेवा करें और अपनी बुराइयों को छोड़ें। जब योग्य बन जायें तब इस मौन साधना का श्री गणेश करें। इसी मौन साधना द्वारा आत्मा के दर्शन और परमात्मा से तद्रूपता प्राप्त हो पायेगी।

इसी अवस्था की प्राप्ति के लिये ही हमारी प्रार्थना में "ऊँ सहनाववतु" वाला मन्त्र शामिल किया गया है जिसमें गुरु और शिष्य की साथ-साथ परमपिता परमेश्वर से विनती की गई है कि - दोनों की साथ-साथ रक्षा व पालन हों; साथ ही साथ हम शक्ति प्राप्त करें, तेजोमयी विद्या पायें। और अन्ततः अपनी दुई मिटाकर स्नेह सूत्र में बंधकर, एक हो जायें एवं परम लय अवस्था को प्राप्त करें।

इस मौन-साधना में कोई आशा या इच्छा लेकर नहीं बैठना चाहिये कि हमें प्रकाश की झलक मिले या शब्द सुनाई दे या गुरुदेव के दर्शन हों अथवा सांसारिक सुख मिल जायें, काम में सफलता मिल जाये आदि।

हमें तो मानो गंगा के प्रवाह में अपने आपको समर्पित कर देना है। करना-कराना कुछ नहीं हैं। प्रवाह जिधर भी ले

Scanned by CamScanner

जाये उसी के साथ-साथ बढ़े चलें, कोई अवरोध नहीं करना है, कोई प्रयास नहीं करना है। इस प्रकार होना है जैसे कि कलाकार पत्थर को एक सुन्दर मूर्ति के रूप में ढाल देता है। साधक को स्वयं को भी इसी प्रकार उस महानतम कलाकार (परमात्मा) के हाथों में छोड़ देना चाहिये।

कुछ साधक केवल मौन साधना करते हैं किन्तु वे शिकायत करते हैं कि इसमें रूखापन रहता है, आनंद नहीं आता। तो आनंद नहीं आने का कारण पात्रता का न होना है। मौन - साधना की पात्रता हासिल करने के लिये एक सरल युक्ति का अभ्यास करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है और वह युक्ति हे कि प्रतिक्रिया करने की आदत का त्याग करें। हम देखते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं; सुनते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं; खाने में रस आता हे उसकी प्रतिक्रिया करते हैं; कुछ सूंघते हैं उसकी या कोई वस्तु छूते हैं तो भी भांति-भांति की प्रतिक्रियायें करते रहते हैं। मन में संकल्प-विकल्प उठते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं। जब तक इन प्रतिक्रियाओं का तांता नहीं टूटेगा, तब तक मौन साधना सधेगी कैसे ?

इसी प्रकार कम बोलने का अभ्यास करने की भी आवश्यकता है। और कम बोलने में वही व्यक्ति सफल होगा जो प्रतिक्रिया की आदत को छोड़ देगा, जिसके लिये विवेक तथा वैराग की साधना भी सहायक होती है। महात्मा गौतम बुद्ध ने साढ़े छः वर्ष साधना की। उसके अंत में उन्होंने यह निर्णय दिया कि भीतर अथवा बाह्य में प्रतिक्रिया न हो। यह अच्छा है, वह बुरा है अर्थात जब तक ऐसे विचार आते रहेंगे सफलता नहीं मिलेगी क्योंकि प्रत्येक विचार अपने आप भी

Scanned by CamScanner

एक प्रतिक्रिया है। इसीलिये उन्होंने विचारों से रहित होने का, 'शून्य होने का' यह साधन बताया है कि हम प्रतिक्रिया की वृत्ति को छोड़ दें। बात बहुत छोटी सी लगती है परन्तु व्यवहार में बड़ी कठिनाई होगी। पर निरन्तर अभ्यास करने से यह आदत छूट जायेगी।

उपनिषद् भी यही बताते हैं - 'निर्द्वन्द्व अवस्था में स्थिर होना है।' आत्मा के मौन का आभास तब ही होता है जब मन और बुद्धि दोनों स्थिर हो जाते हैं। आत्मिक मौन को ही वास्वविक मौन कहते हैं।

भक्त रैदास जी ने अपनी सुन्दर पदावली में अधिक बोलने का वर्णन करते हुए अंत में यही तत्त्वज्ञान दिया है कि जब साधक 'मगन' अर्थात मौन हो जाता है तभी उसे 'परमनिधि' प्राप्त हो पाती है। उन्हीं की अमृत वाणी में इस 'मगन' होने के भाव का वर्णन कैसा सुन्दर है :-

तेरा जन काहे को बोलै।
बोलि भगति अपनी को खोलै।। तेरा जन....।
बोलत बोलत बढ़ै वियाधी, बोल अबोले जाई।
बोलै बोल अबोल कोप करै, बोल बोल को खाई।।
बोलै ज्ञान मान परि बोलै, बोलै बोद बड़ाई।
उर मैं धरि धरि जब ही बोलै, तब ही मूल गँवाई।।
बोलि बोलि औरहि समझावै, तब लगि समझ न भाई।
बोलि-बोलि समझी जब बूझी, काल सहित सब खाई।।
बोलै गुरु अरु बोलै चेला, समझ बोल की आई।
कह रैदास मगन भयो जबही, तबहि परम निधि पाई।।

Scanned by CamScanner

वास्तविक स्वरूप दर्शन का उपाय

हमारी हठ विश्वास है कि शरीर के प्रत्येक अंग में प्रभु का वास हैं। परमात्मा तो निरन्तर स्वाँस से भी कही अधिक हमारे समीप हैं। परन्तु हम इस वास्तविकता को भूले हुए हैं। जो हम जिह्वा से कहते हैं - "मन में राम, तन में राम - रोम रोम में रामहि राम," वास्वविकता तो यह ही है, मगर हमने इस रमे हुए राम को भुला रखा है। इस स्मृति को जाग्रत करने के लिये ही यह भजन बार-बार दुहराते हैं।

अधिकतर लोगों के विचार में आत्मा का स्थान मानव शरीर में या तो हृदय या मस्तिष्क माना गया है। महात्मा बुद्ध के अनुसार मन के सदृश्य आत्मा का अस्तित्व भी शरीर के अंग-अंग में विराजता है। हमारी संस्कृति की भी यही मान्यता है। अर्थात प्रभु को बाहर ढूंढ़ने कही नहीं जाना है वरन् मन एवं अन्य इन्द्रियों को अन्तर मुखी करके - नियंत्रित करके, हमारे रोम-रोम में दबी पड़ी ईश्वरीय सत्ता को प्रकाशित करना ही वास्वविक दर्शन है और इसे करने का वास्वविक साधन भी उपलब्ध है।

अतः प्रभु की तलाश में हम जितने भी अन्य बाह्य अभ्यास करते हैं उनका कोई अधिक या विशेष महत्व नहीं है। परन्तु विडम्बना यह है कि साधक को जब तक कोई बहिरमुखी साधन न बताया जावे तो उसकी संतुष्टि नहीं होती है - कस्तूरी के मृग के समान स्थिति है। साधना में कोई प्रयास

Scanned by CamScanner

करना होता है और प्रयास करने से अर्थात खोजने से प्रभु दूर हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि मन प्रधान हो जाता है। परिणाम यह होता है कि आत्मिक - अनुभूति नहीं होती और हम कहने लगते हैं कि दर्शन नहीं होते, प्रभु से हम दूर हो गये।

ईश्वर तो आप स्वयं है। उसके अंश स्वरूप आपके रोम रोम में, कण-कण में ईश्वर विद्यमान हैं। आप स्वयं बार-बार यह निष्ठा मुखरित करते हैं कि - "मेरे मन और तन में राम ही राम रमा हुआ है"। इस विचार में यदि सत्यता है तो आप तो हैं ही राम यानी स्वंय भी परमात्मा स्वरूप है। फिर क्यों कहते हैं कि राम की प्राप्ति का साधन बताइये?

पूज्य गुरुदेव, महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज भी कहा करते थे कि ऐसे व्यक्ति के लिये तो साधना की कोई - आवश्यकता ही नहीं हैं और ऐसा अनेकों महा-पुरुषों ने सिद्ध भी किया है। साधन करने वाले, आप अपने मन को शान्त करिये, अन्य इन्द्रियों को नियमित करिये, आपके भीतर में दबा पड़ा परमात्मा - आत्मा स्वयं प्रकाशित होने लगेगा। वो सचमुच हमारे कण-कण में, रोम-रोम में विराजमान है।

शरीर, मन, बुद्धि को स्थिर करते ही आप पायेंगे कि आप तो स्वयं ही ईस्वर स्वरूप हैं। वेदान्तियों की बात - 'ब्रह्मास्मि' भी ग़लत नहीं है, परन्तु साधना के रूप में यह मात्र कहते रहना ही पर्याप्त नहीं है।

जब सिद्धि हो जाती है, मन शांत हो जाता है शब्द समाप्त हो जाते हैं तब कौन कहेगा कि "मै ब्रह्म हूँ"। आत्मा तो 'निशब्द' है। इसी कारण जन साधारण द्वारा इस साधना की प्रतिक्रिया की जाती है। साधन तो यह सही है परन्तु कहने

Scanned by CamScanner

मात्र से नहीं वरन् मन, बुद्धि, शरीर, विचार इत्यादि स्थिर होने के उपरान्त अनुभव करने का विषय है। अतः गलती साधक को है। इसका ज्ञान कहने से नहीं, अनुभव करने से होगा।

अनुभव करने के लिए पहले विचारों के द्वंद्व से मुक्त होना होगा। पहला द्वंद्व है स्तुति और निंदा का। संसार की स्तुति करोगे तो और फंस जाओगे, अपने भले कामों की प्रशंसा करोगे तो माया मोह जकड़ लेंगे। अतः पूज्य गुरुदेव के उपदेश के अनुसार यदि स्तुति करना चाहते हो तो ईश्वर के गुणों का गान करो, अपनी आत्मा की स्तुति करो, अपने वास्वविक स्वरूप को सराहो, "प्रभु, मैं तो तेरा ही अंश हूँ।"

जहाँ पूज्य गुरुदेव ने अपने इष्ट देव की स्तुति करने पर बल दिया है वहीं निन्दा के प्रति उनका परामर्श था कि यदि निन्दा ही करना चाहते हो तो संसार के लोगों की, मित्र या शत्रु की नहीं बल्कि अपनी स्वयं की निंदा करो। इसका क्या भेद है? यह उनका बड़ा ही गूढ़ आदेश था; इसको समझने के लिये स्व–निरीक्षण करना आवश्यक है। अपने अन्तर में झांकिये, आप पायेंगे कि, मन विचार उठाता रहता है, और विचारों की प्रकृति हर समय 'दुई' की, द्वंद्व की है – भला–बुरा, सर्दी–गर्मी, स्तुति–निन्दा जैसे द्वंद्व ही मन प्रतिक्षण उठाता है। यही बातें अन्य द्वंद्वों की प्रतीक और कारण हैं।

इस स्तुति–निन्दा के संग्राम में फंसे रहने से हमारा मन स्थिर नहीं हो सकता। कुरुक्षेत्र का संग्राम भीतर में प्रतिक्षण होता रहता है। इससे निराश नहीं होना चाहिये वरन् प्रयास करना चाहिये कि हम द्वंद्व के विचारों से मुक्त हो जायें। ऐसा होने तक हमारी साधना में आनंद नही आ सकता। अस्थिर

Scanned by CamScanner

मन प्रभावशाली बना रहेगा व ईश्वर-स्वरूप आत्मा अप्रकाशित रहेगी, छिपी रहेगी। यह एक विचित्र लीला है प्रभु की कि मन ही द्वंद्व के विचार उठाता है और मन स्वयं उनसे संग्राम भी करता रहता है। परिणाम स्वरूप हम मोह या राग और द्वेष या घृणा, जैसी अवांछित भावनाओं में फँसे रहते हैं। द्वंद्व रहित विचारों से हानि नहीं होती।

अतः दर्शन हेतु कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है। वह परम शक्ति हम सभी के रोम-रोम में रमी हुई है परन्तु हमारा मन अस्थिर होन के कारण, बुद्धि विचार द्वंद्व-युक्त होने के कारण हमें अपने असली अस्तित्व का आभास नहीं होता।

सत्संग और सत्गुरु के सत्संग का लाभ निरन्तर रहने से यह आभास संभव हो जाता है - हमारा मन, बुद्धि, विचार, स्थिर होने लगते हैं। जब रास्ते के पर्दे या रुकावटें दूर हो जाती हैं तो परमात्मा का अंश - आत्मा स्वंय ही प्रकाशित होने लगती है, उसका आभास होने लगता है।

यह अवस्था अप्रयास-निरन्तर बनी रहनी चाहिये। यही वास्वविक दर्शन है जिसे सिर्फ़ अनुभव किया जा सकता है। यहाँ आकर शब्द समाप्त हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति निरन्तर आत्मा में स्थित रहता है, उसका स्वभाव सुन्दर हो जाता है, उसके आस-पास का वातावरण प्रेममय व आनंदमय हो जाता है।

पूज्य गुरुदेव कृपा करें कि आपके मन, बुद्धि और विचार स्थिर हो जायें, आपकी आत्मा निरन्तर प्रकाशित होती रहे एवं आपको अपने स्वरूप का आप वास्तविक दर्शन हो सके।

"जीवन की कला यह है कि हम कमल पुष्प की तरह रहें, सदा खिले हुए और आनन्दित रहें।"

Scanned by CamScanner

परमार्थ साधना से ईश्वर की प्राप्ति

हर संत-गुरु ने प्रभु की महिमा गाई है। चाहे संत रामदास आये हैं, चाहे कबीर साहब या नानकदेव जी, सभी संतों ने ईश्वर की अनंत महिमा गाई है और अपने-अपने ढ़ंग से उसे पाने का उपाय बताया है। आत्मा का साक्षात्कार या ईश्वर की प्राप्ति दोनों एक ही बात हैं। परन्तु उसके लिए हर किसी महापुरुष द्वारा काल या परिस्थित अनुसार एक पद्धति बताई जाती है। कुछ समय बाद वो बात साधारण हो जाती है और मनुष्य की वृत्ति उस ओर से हट जाती है। इस कारण दूसरे महापुरुष जो बाद में आते हैं, उसी शिक्षा को दूसरो प्रकार से प्रकट करते हैं और वह शिक्षा भी जब समय अनुसार साधारण हो जाती है व मनुष्यों की रुचि उससे हट जाती है तो अन्य महापुरुष आकर फिर उसमें परिवर्तन करते हैं, अपने ढंग से उसी सच्चाई को ज़ाहिर करते हैं, जिससे जन साधारण की रुचि वहाँ लगे। यही क्रम चलता रहता है।

सभी की शिक्षा का आशय यही है कि मनुष्य आत्मा तत्व या परम तत्व-सत्य की ओर चले, चाहे शब्दों का ऊपरी रूप उनमें भिन्न ही क्यों न हों। असली सत्य सबका एक ही होता है, चाहे वो संत हों, चाहे ऋषि हों, चाहें अवतारी पुरुष हों। हर एक ने एक दूसरे का समर्थन किया है, खंडन या परिवर्तन नहीं किया है। जो अनुभवी पुरुष हैं वो इसको समझते हैं व असलियत पर नज़र रखते हुए सबमें सच्चाई

Scanned by CamScanner

देखते हैं। जो ऊपरी निगाह से देखते हैं वो इसमें भेद या अन्तर देखते हैं अर्थात किसी को अच्छा या बुरा कहते हैं।

भगवान व्यास के षट् सम्पति साधन वही हैं जो भगवान पातंजलि ने यम नियम के रूप में बताये हैं और सूफ़ियों के साधन के नियम भी मोटे तौर पर यही ज़ाहिर जाहिर करते हैं। बुद्ध भगवान के पंचशील के आठें सहज साधन ग्रहण करना आदि भी ऊपर कहे साधनों का ही दूसरा रूप हैं, कोई नये साधन नहीं हैं। उन्होंने ईश्वर प्राप्ति का जो साधारण रूप जो मौजूद था, उसी को आसानी से समझ में आ सके ऐसा करके बताया है। उन्होंने आत्मा व ईश्वर का नाम न लेकर एक पूर्ण आनंद की अवस्था के रूप में विवेचन किया है, जिसको हर आदमी आसानी से समझ सके।

वास्तव में आत्म तत्व व परमानंद में कोई भेद नहीं है। दुनिया में आकर हर मनुष्य जो ज़रा भी समझ रखता है, चाहता है कि यत्न करके जो चीज़ अच्छी लगती हैं, हासिल करले और सुख भोगे। यही रास्ता दिखाने का काम संत महापुरुष करते हैं। परमार्थ का रास्ता तर्क का रास्ता नहीं है। परमार्थ कहते है परम अर्थ। परमअर्थ का मतलब है कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है उसे जानना और दो शब्दों में वो है – अपने आप को पहचानना, आत्मा की अनुभूति करना, ईश्वर का दर्शन करना। परन्तु सार 'सब का एक ही है। किसी महापुरुष ने अपने पूर्वजों का खंडन नहीं किया है। समाज बदलता रहता है, समाज के व्यक्तियों के स्वभाव में परिवर्तन आता रहता है। तो जैसी स्थिति उस समय होती है उसके

Scanned by CamScanner

अनुसार महापुरुष अवतार लेते हैं और मार्गदर्शन कराते हैं। समय के अनुसार समझाने का प्रयत्न करते हैं।

महात्मा बुद्ध ने आत्मा या परमात्मा का नाम तो लिया है परंतु विशेष महत्व नहीं दिया है। कई जिज्ञासु आते थे और वो महात्मा बुद्ध से पूछते थे कि "भगवन, आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है, उसकी प्राप्ति कैसे होती है? सत्यता क्या है और आनंद क्या है?" ये प्रश्न आज भी समाज पूछता है और पहले युगों में भी जिज्ञासु पूछते ही आये थे, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर में आत्मा है। उसी आत्मा का प्रकाश जिज्ञासु को भीतर से प्रेरणा देता है। याने भीतर में एक चाह होती है यह जानने की कि वास्तव में सत्य क्या है। वह इसी समस्या में उलझा हुआ सोचता रहता है कि संसार क्या है। श्मशान भूमि में जाकर व्यक्ति देखता है कि लोगबाग मर रहे हैं, जलाये जा रहे हैं। कुछ लोग हँस भी रहे हैं, उनमें उन्हें कोई चिंता नज़र नहीं आती है। तो जो जिज्ञासु होता है वह सोचता है कि ये कैसे लोग हैं? रोते आये थे व हँसते जा रहे हैं।

कबीर साहब के समय में भी एक ऐसी घट्ना घटी हैं। एक सच्चा जिज्ञासु था, वह कबीर साहब के दर्शन करने जाता है। वो घर जाता है तो पता लगता हे कि वो तो श्मशान में गये हैं। वह कहने लगा कि वहाँ इतने सारे आदमियों में से मैं उन्हें पहचानूंगा कैसे? तो उसे बताया गया कि कबीर साहब ही गंभीर मुद्रा में होंगे और लौट्ते लोगों में केवल उन्हीं के मुख पर प्रकाश होगा। अन्य लोग ऐसे नहीं होंगे। इस तरह तुम्हें कबीर साहब को पहचानने में कठिनाई नहीं होगी। ऐसा

Scanned by CamScanner

ही उस जिज्ञासु ने देखा कि सभी हँस या बतिया रहे हैं। केवल कबीर साहब ही सबसे अलग थे। कबीर साहब को पहचानने में उसे कोई दिक्कत नहीं हुई। वे शान्त थे उनके चेहरे पर प्रकाश था, नूर था, तेज था। इससे वे पहचाने गये।

जिज्ञासा तो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर होती है। परन्तु जिज्ञासु भी ऐसा हो जैसे चातक, जो कि निरन्तर स्वाति बूँद की प्रतीक्षा कर रहा है। वर्षा हो गई है, खूब पानी भरा हे परन्तु चातक अपना मुख बंद नहीं कर रहा है। जो बूँदें आ रही हैं उनका तिरस्कार कर रहा है। वो तो एक विशेष बूँद का इंतज़ार कर रहा है। वो अमृत बूँद है, स्वाति बूँद–आत्मा की बूँद ताकि वह बूँद उसके मुख में जाये और उसकी तृप्ति हो जाये, उद्धार हो जाये। अभी तक किसी ने नहीं बताया कि वह पक्षी कैसा है, कौंन सा पक्षी ऐसा होता है। परन्तु इसका उदाहरण आदिकाल से ही शास्त्रों में आता है।

चातक के इसी गुण की महिमा को लेकर महापुरुष सच्चे जिज्ञासुओं से कहते है कि वो प्रभु से ऐसा प्रेम करें कि जैसा चातक स्वाति बूँद से करता है। महाप्रभु से लोगों ने प्रश्न किया कि आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, तो वे कहते थे कि "मेरी जो साधना है, इसे कुछ दिन करके तब मेरे पास आओ। तब ये प्रश्न मुझसे करना, मैं उत्तर दूंगा।" अपनी साधना का जो रूप बतलाते थे उसे वे 'विपेशना' कहते थे। वो बतलाते थे कि उस साधना द्वारा व्यक्ति शरीर को भी देखता है व मन को भी देखता है। उस साधना द्वारा मन स्थिर हो जाता है। शरीर कोमल हो जाता है। बुद्धि शांत हो जाती है। साधक राग–द्वेष

Scanned by CamScanner

से मुक्त हो जाता है। तो जब ऐसी स्थिति होती थी, तो जिज्ञासु के भीतर में आनंद रूपी सूर्योदय हो जाता था। जब उसको आनंद की स्थिति प्राप्त होती थी तो वह प्रभु के चरणों में भिक्षु बनने की प्रार्थना करता था और मौन साधना में लग जाता था। अब उसको अनुभूति हो गई कि सत्यता क्या है, आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है - अब वो पूछता नहीं है, मौन साधना करता है।

महात्मा बुद्ध बतलाते थे कि आत्मा व परमात्मा का शब्दों से वर्णन नहीं हो सकता। आज तक किसी ने आत्मा व परमात्मा का सही वर्णन नहीं किया है। यह संभव ही नहीं है। यदि परमात्मा को शब्दों में बाँध सकें तो वह परमात्मा नहीं हैं। हमारे दादा गुरुदेव भी कहते थे कि परमात्मा को कौन वर्णन कर सकता है। उसका वर्णन करने का तरह-तरह से प्रयास किया गया है, पर उससे उसका पता नहीं लग सकता। कुछ-कुछ समझ में आ भी जाता है - तो उसे कहा नहीं जा सकता। अनुभूति हो जाती है - तब साधक मौन में चला जाता है, उसका मौन में विलय हो जाता है।

- मनुष्य को हमेशा विद्यार्थी की सी सीखने की वृत्ति बनाये रखने चाहिये।
- ज्ञान इतना असीम है कि कोई कह नहीं सकता कि मैंने सब कुछ सीख लिया है।

Scanned by CamScanner

विवेक और वैराग्य साधना का अभ्यास

सामान्यतः सब साधक यही कहते हैं कि उनका मन स्थिर नहीं होता है। वीर अर्जुन भी भगवान से यही बात करता है कि भगवान मेरा मन नहीं लगता हैं। भगवान कहते हैं 'अर्जुन मुट्ठी में वायु बंद की जा सकती है। परन्तु मन को काबू में करना कठिन है।' अर्जुन कहता है कि कोई उपाय तो होना चाहिए, वही बताइये। भगवान सरलता से उत्तर देते है कि, 'सच्चे जिज्ञासु को वैराग्य एवं विवेक के अभ्यास का साधन करना चाहिए।'

वैराग्य से पहले विवेक का अभ्यास किया जाता है। बिना विवेक के वैराग्य सधता ही नहीं। वैराग्य का अर्थ घर से भाग जाना नहीं है। असंतुष्टि के कारण घर छोड़ देना तो वैराग्य नहीं है। पहला चरण है विवेक का, हंस गति का। हंस क्या करता है – कंकड़ में से मोती चुन लेता है कंकड़ छोड़ देता है। दूध में से दूध पी लेता है पानी छोड़ देता है। यह उसकी सहज अवस्था है, स्वभाव ही है। उस पक्षी का स्वभाव हंस-गति कहलाता है। परन्तु भगवान ने मनुष्य को चेतना दी है अतः उसकी विवेक शक्ति (Power of Discrimination) तो बहुत तीव्र होनी चाहिए, परन्तु है नहीं।

मनुष्य इन्द्रियों के भोगों में इतना ग्रस्त हो रहा है कि विवेक क्या होता है इसका उसको आभास ही नहीं है। विवेक के अर्थ हैं व्यवहारिक ज्ञान। हम भोजन कर रहे हैं तो जुबान के रस के कारण हम अधिक खाते जाएँ तो यह अविवेक है

Scanned by CamScanner

और जिसको विवेक है और खाने के जायके पर नियंत्रण है वह उतना ही खाएगा जितना आवश्यक है। जिसका विवेक सध गया है वह बोलेगा बहुत कम, आवश्यकता के अनुसार बोलेगा, क्योंकि वह जानता है अधिक बोलने से शक्ति कम होती है या कभी-कभी ग़लतफ़हमी उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए विवेकी साधक कम बोलता है। इसी प्रकार शब्दों का प्रयोग सोच समझकर करेगा, ऐसे शब्दों का प्रयोग करेगा जिससे दूसरों को दुःख न पहुँचे। वह मधुरता से बोलेगा।

हम लोग वाणी पर, विचार और व्यवहार पर कोई निगाह नहीं रखते इसीलिये हमारा विवेक सधता नहीं। विवेक का और विस्तार करें तो जो व्यवहार, जो विचार हमारे अहित में हैं उनका त्याग करना हमारा सहज स्वभाव बन जाएगा। जो व्यवहार और विचार हमारे हित में हों उन्हें सहजता से अपनाएँ। इससे और आगे बढ़ेंगे तो जो विचार हमें आत्मा की अथवा अपने इष्टदेव की ओर ले जाएँगे हम उन्हीं को अपनाएँगे, अन्य सबका त्याग करते चले जाएँगे। विवेक का अन्तिम चरण यह है कि हमें आत्मिकता व अनात्मिकता में अन्तर मालूम होने लगे। हम आत्मा को पकड़ें एवं अनात्मिकता की बातों का त्याग करते चले जाएँ। जब यह विवेक सध जाता है तो वैराग्य का साधन शुरु होता है।

वैराग्य का अर्थ है बे-राग हो जाना। राग के दो रूप हैं-राग और द्वेष। दोनों का ही त्याग करना है। राग भी बंधन है, मोह भी बंधन है। द्वेष तो बंधन है ही। पहले द्वेष को छोड़ने का प्रयास करते हैं। फिर राग या मोह को छोड़ने का प्रयास करते हैं, फिर दोनों का त्याग कर देते हैं- सम

Scanned by CamScanner

अवस्था में चले जाते हैं। सच्चा प्रेमी जो है उसके मन में ईश्वर के प्रति अनुराग है परन्तु संसार की वस्तुओं के लिए वैराग्य है। राग और द्वेष का नाम ही संसार है। इन दोनों के त्याग से वैराग्य दृढ़ होता है। वैराग्य के साथ अभ्यास करो यानि प्रभु से प्रेम करो।

अभ्यासी का विवेक और वैराग्य जब परिपक्व हो जाता है तो वह प्रभु से प्रेम करता है फिर भी यदि उसका मन अधिक इधर-उधर भागता है तो उसे समझने के लिये पूज्य गुरुदेव की पुस्तक 'अभ्यास में मन न लगने के कारण व उपाय' को पढ़ें। परन्तु विवेक और वैराग्य का साधन करना ही पड़ेगा। इसके बिना साधना हो ही नहीं सकती। चैतन्य महाप्रभु का कथन है कि कोई भी साधक साधना में सफल नहीं हो सकता जब तक वह वैराग्य की साधना नहीं करता।

हम चाहते है कि हमारे संसार के सारे काम पूरे होते रहें, मानो जैसे भगवान हमारा आज्ञाकारी हो। हमारे बच्चे पास हो जाएँ, उनकी नौकरी लग जाये, उनकी संतान हो जाए, मुकदमें ठीक हो जाएँ, यही बातें हम हर वक्त सोचते रहते हैं। अगर कोई काम नहीं होता तो हम निराश हो जातें हैं। निराश मन एकाग्र नहीं हो सकता। जब तक विवेक और वैराग्य सहज नहीं हो पाएगा, हंस गति नहीं हो जाएगी, मन एकाग्र नहीं होगा। और इसके साथ चाहिये अनुराग-प्रभु के प्रेम की व्याकुलता और उनसे पृथक होने का विरह। ऐसी दशा हो जाये कि उसके बिना हम सब कुछ भूल जाएँ । हम स्नाना, पीना, सोना, अच्छे वस्त्र पहनने, मित्रों की संगति, सब कुछ भूल जाएँ। केवल प्रभु के चरणों का प्रेम ही रह जाए।

Scanned by CamScanner

जब इन तीन बातों का - विवेक, वैराग्य, व शुद्ध अनुराग का अभ्यास करते हैं तब मन सहज ही स्थिर होने लगता है। विनोबा जी बहुत महान और ज्ञानी संत थे। उन्होंने विवेक और वैराग्य की साधना की थी। वे कहा करते थे कि "लोग-बाग कहते हैं कि हमारे विचार स्थिर नहीं होते हैं। 'यह मुझे समझ नहीं आता। जब मुझे कोई विचार उठाना होता है तो मुझे दिक्कत होती है। क्योंकि मैं तो निरन्तर मौन रहता हूँ।" वह ठीक ही कहते हैं।

हम लोग प्रायः हर समय इन्द्रियों के भोग में फँसे रहते हैं-आंख हर वक्त कुछ-न-कुछ प्रतिक्रिया करती रहती है, कान भलाई- बुराई सुनते रहते हैं, ऐसे ही जबान से भी करते रहते हैं। खाने-पीने में भी कोई विवेक नहीं है। मन हमेशा संकल्प विकल्प उठाता रहता है। इस पर कोई नियंत्रण नहीं है। विवेक जब सध जाता है तब व्यक्ति वही विचार उठाता है, जिसकी आवश्यकता होती है। तो संतों के उपदेश के अनुसार विवेक और वैराग्य की साधना निरन्तर होनी चाहिए, ताकि हमारा स्वभाव स्थिर बन जाये।

हम हर समय आत्मा की, परमात्मा की, गुरुदेव के चरणों की ओर बढ़ें, अन्य सब त्याग कर दें। यह हमारी सहज अवस्था बन जाए। संसार की सेवा करें, परन्तु प्रेम भाव से ईश्वर की सेवा समझकर। समाज में भी ईश्वर का रूप समझकर, ईश्वर की ही सेवा समझकर सबके साथ व्यवहार करें। अब तो यदि हम किसी की सेवा करते हैं या प्रेम करते हैं तो आशा रखते हैं कि इसका फल हमें मिलेगा। यदि हमें सेवा का फल नहीं मिलता है तो निराशा होती है। यह तो

Scanned by CamScanner

लेकिन इनका अभ्यास अपने सुख के लिये करिये। आप सुखी हो जाएंगे, आनंदमय हो जाएंगे तो संसार भी आपको आनंदमय लगेगा। आप भीतर में जब दुखी होते हैं तो सब व्यक्तियों में आप दोष देखते हैं। जिसके भीतर में आत्मिक आनंद उत्पन्न हो गया वह किसी पर भी शंका नहीं करता। वह निर्मल मनसे निर्भय अवस्था में रहता है। जब वह परमात्मा के तद्रूप है तो उसको भय कैसा?

पंजाब में एक सूफ़ी हुए हैं बुल्लेशाह-बुल्ले, जात के माली थे। आपसे पूछा गया कि प्रभु की प्राप्ति कैसे करें। हँस पड़े और कहने लगे - "पौधे को इधर से उठाया उधर को लगा दिया। मन को प्रभु के चरणों में लगा दिया तो प्रभु में लग गया, इसमें क्या कठिनाई है? हकीकत यही है कि मन को अनात्मिकता से हटाकर विवेक के साथ आत्मा में लगाओ।

महर्षि रमन कहते हैं कि किसी की पूजा मत करो अपनी पूजा करो। भगवान भीतर में बैठे हैं आपके पास हैं, आप अपनी ही पूजा करो। किसी खोज की ज़रूरत नहीं क्योंकि प्रभु भीतर में हैं। अपनी सुरत को आत्मा में विलय कर दो। मन को हटाकर अपने ही सच्चे स्वरूप के दर्शन करो।

जैसे डाक्टर साधारण सी दवाई मरीज़ को दे दें तो उसे विश्वास नहीं आता है। इसी तरह सीधी सादी बात कहें तो कोई सुनता नहीं। जो बुल्लेशाह ने कहा है उससे कुण्डलिनी भी जाग्रत हो जाती है कुण्डलिनी जाग्रत होने का मतलब है कि सुरत जो गणेश चक्र में फँसी हुई है वहाँ से निकलकर अपने निजी स्थान धूर धाम तक चढ़ती चली जाए। दिन साधक अभ्यास करें तो यह भी संभव है।

Scanned by CamScanner

यह मन इतना ढीठ हो गया है कि बात की सत्यता को समझता तो है परन्तु उसकी ओर ध्यान नहीं करता। मक्खी गंदगी की ओर ही जाती है पर मधुमक्खी मधु की तरफ़ जाती है और वहाँ भी किनारे पर रहती है, फँसती नहीं है।

मनुष्य की हालत साधारण मक्खी की तरह है। साधक को मधुमक्खी की तरह रहना चाहिये। वृत्ति को बदलना है। इसके लिए शक्ति चाहिए, तभी तो भगवान अर्जुन को कहते हैं कि तू क्षत्रिय बनकर लड़ता जा! साधकों को भी प्रेरणा दी है कि अपने जीवन में अनात्मिक कार्यों को तजते जाये तथा आवश्यक ईश्वरीय गुणों को धारण करें।

सबसे पहले तामसिकता का त्याग करे, राजसिक गुणों को अपनायें, फिर सात्विकता को पकड़ें, और फिर तीनों गुणों को छोड़ दें। और यह विवेक और वैराग्य की साधना का अभ्यास करने से संभव है।

* हमारी साधना का परिणाम यह होना चाहिये कि हमारा चित्त शुद्ध हो जाये - हमारा व्यवहार भी निर्मल हो

* यदि हम अपने चित्त को निर्मल करना चाहते हैं तो मानसिक तौर पर भगवान के चरणों में बैठ कर रोयें।

* जो दीन होते हैं, भक्त होते हैं, उनका हृदय कोमल होता है, बहुत बिशाल होता है, बड़ा उदार होता है।

Scanned by CamScanner

ईश्वरीय गुणों का महत्व

संसार के सभी महान ऋषि-मुनियों, संत महापुरुषों और उनके लिखे वेद,उपनिषद्, पुराण, महाभारत, गीता, रामायण, बाइबल, कुरान शरीफ़, गुरुग्रन्थ साहब, और दूसरे आदि सम्प्रदायों के धर्म ग्रन्थों और आध्यात्मिक शास्त्रों या 'रूहानी आवाज़' की किताबों में संदेश यही है कि मानव सर्वोत्तम प्राणी है और उसका जन्म व शरीर ईश्वर की सत्ता को जानने और साक्षात्कार करने के लिये ही है।

सभी ने यह बताया है कि इस महान उद्देश्य की प्राप्ति की शुरुआत होगी उसके महान गुणों को सीखने से, अपनाने से। मनुष्य सबसे ऊँची श्रेणी का जीव है - क्योंकि सब प्राणियों में केवल वो ही अपने असली स्वरूप को पहचान सकता है। इसलिये प्रकृति में अपने गुणों को लेकर स्वधर्म का आश्रय लेते हुए, इस जीवन को व्यतीत और सफल करना चाहिए। यही सब धर्मो का मानना है।

बात बड़ी साधारण सी है। परन्तु स्वार्थी लोगों ने धर्म को इतना उलझाने वाला कर दिया है कि सभी लोग दुखी हैं। एक दूसरे को बुरा भला समझते हैं, परस्पर वैर-द्वेष या झगड़े करते हैं। धर्मग्रंथों की शिक्षा पर कोई नहीं चलता। हमारे शास्त्र, हमारे महापुरुष सभी कहते हैं कि पैसा यानी धन सम्पत्ति एकत्र नहीं करना चाहिए क्योंकि बिना बेईमानी या पाप के पैंसा एकत्र नहीं होता है। न ही सम्पति को एकत्र करना चाहिए, न किसी का शोषण करना चाहिए।

Scanned by CamScanner

परन्तु हम देख रहे हैं कि हर व्यक्ति के मन में होड़ है कि पैसा एकत्र करूँ, चाहे जिस तरह से भी हो पैसा जमा करूँ। अपनी आवश्यकताएँ, अपनी ज़रूरतें कोई व्यक्ति कम करने के लिए तैयार नहीं है। इसीलिये हम सब दुखी हैं। चाहिए तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति धर्म में निष्ठा और विश्वास रखे, धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए, इसी जीवन का असली ध्येय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करे।

जीवन की सफलता क्या है ? हम अपने आप को पहचानें व अपने इष्ट देव के दर्शन करें। अपनी आत्मा को परमात्मा में मिला दें। ये भिन्न-भिन्न प्रकार से करना सम्भव होता है। जैसा भी हो सके, जैसा भी आपको अच्छा लगे, जिस प्रकार भी आप उचित समझें, वही साधन करना अच्छा है। इस संसार में सबसे मधुर प्रेम का नाता बनाते हुए अपने आप को पहचानें। सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें। हमारे शब्दों में, हमारी वाणी में, हमारे व्यवहार में मधुरता हो। यदि और कुछ भी नहीं दे सकते तो मधुरता तो बाँट सकते हैं। और भगवान ने जिस स्थिति में हमें रखा है उस स्थिति में रहके, अपने धर्म और कर्त्तव्य का पालन करते रहें। स्वधर्म का अर्थ यही है कि हमारे परमात्मा ने हमें जो काम सौपा है उसे बड़ी ईमानदारी के साथ, बड़ी दयानतदारी के साथ करें।

भगवान कृष्ण ने इसे बड़े सुन्दर और स्पष्ट रूप में कहा है कि कर्म को यज्ञ रूप बना लो। यज्ञ में क्या करते हैं - उसमें आहुति या बलिदान देते हैं। इसका सरल सीधा उपाय यह है कि अपने प्रत्येक कर्म को पूजा रूप, सेवा रूप बना दो। गुरु महाराज ने भी बड़े सुन्दर ढंग से यही समझाया है।

Scanned by CamScanner

परन्तु हम वैसा करते नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर में एक अभिमान है, अहंकार है, 'मैं' है। इस 'मैं' के कारण अपना जो स्वधर्म है, इसको पालन नहीं कर पाते हैं।

यदि व्यक्ति अपने स्वधर्म का सही ढ़ंग से पालन करें अर्थात परिवार में पत्नी का स्नेहपूर्ण सहयोग, सेवा और सहायता लेते और देते हैं, अपने माता-पिता की सेवा करते हैं, माता पिता सही तरीके से बच्चों की सेवा करते हैं तो स्वर्ग कहीं होगा सो होगा - ऐसे घर में ही स्वर्ग बन जायेगा। इस संसार में ही स्वर्ग मिल सकता है। इस संसार में ही प्रभु की अनुभूति हो सकती है। स्वर्ग जैसे वातावरण का सुख प्राप्त कर लेना कितना आसान काम है यदि सब लोग स्वधर्म का पालन करें।

कृष्ण भगवान ने स्वधर्म का पालन करने के लिये गीता के प्रवचन दिये हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार से बताया है कि किसी भी प्रकार धर्म (इसका भाव कर्त्तव्य भी है) का पालन करना है। परन्तु संक्षिप्त में शुरु में भी यही लिया है और अंत में भी यही कहा है कि धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए। धर्म तो इस लोक में भी सहायक है और परलोक में भी सहायक है। बाकी चाहे जितना किताबें पढ़ते चले जाओ, लाइब्रेरी बना लो किन्तु यदि एक शब्द को भी हजम नहीं किया, उनके बताये आदर्श यानी ईश्वरीय गुणों को अपनाया नहीं तो ऐसी पढ़ाई या लाइब्रेरी का क्या लाभ?

युधिष्ठिर का उदाहरण है - सत् का जो प्रथम पाठ वाला केवल एक शब्द पढ़ा है उसको ही आचरण में पालन करने के लिये अड़े रहे, तब आगे पढ़ना सीखा है।

Scanned by CamScanner

गुरु महाराज कहा करते थे कि ईश्वर में हजारों गुण हैं, यदि एक गुण में भी हम निपुणता प्राप्त करलें तो हम ईश्वर के जैसे ही हो सकते हैं। परमात्मा सागर-रूप है, उसकी प्रत्येक बूँद में वही गुण हैं जो सागर में हैं। आकार में भले ही अंतर हों परन्तु गुणों में कोई अन्तर नहीं। एक गुण को ही पकड़ लें। युधिष्ठिर ने एक ही शब्द पकड़ा - सत्य। राजा हरिश्चन्द्र ने भी एक ही शब्द पकड़ा 'सत्य'। उस सत्य को अपनाने से ही उन दोनों को परलोक मिल गया। कोई विशेष साधना नहीं की है। परीक्षा दी, देनी पड़ती है। जो आदर्श का जीवन जीता है उसको बलिदान देना ही पड़ता है।

मानव जीवन बना ही इसलिये है कि वो आदर्शमय जीवन जिये। यह ठीक है कि यदि हम एक ही ईश्वरीय गुण या आदर्श को पकड़ लें तो उद्धार हो जायेगा, मनुष्य को बीसियों आदर्श पकड़ने की ज़रूरत नहीं है।

गीता में, गुरु ग्रन्थ साहब में या अन्य धर्म ग्रन्थों में साधकों को बड़ी स्वतंत्रता दी है कि जो भी रास्ता तुम्हें अच्छा लगता है उसे पकड़ लो, मगर दृढ़ता से पकड़ो। भक्ति योग पकड़ो, कर्म योग, ज्ञान योग, वैराग्य या सन्यास का कोई भी पथ पकड़ो, मगर पकड़ो दृढ़ता से। अर्जुन को केवल एक ही रास्ता पकड़वाया - केवल 'स्वधर्म का पालन करो'।

वास्तव में आनंद या स्वर्ग का सुख कोई दूर नहीं है, हमारे भीतर में है, हमारे पास ही है, बस ज़रा स्वनिरीक्षण करने की ज़रूरत है। अपने भीतर में घुसने की ज़रूरत है। शांत मन से देखें कि हमारे अपने अंदर क्या कमी है। मुसीबत ये है कि कोई भी व्यक्ति अपनी ग़लतियों को देखने और मानने के लिये तैयार नहीं है।

Scanned by CamScanner

इसके लिये कबीर साहब ने निंदक को सबसे बड़ा गुरु माना है। उनकी पंक्ति है कि : 'निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय'। इसमें वे यही कहते हैं कि 'मेरा निन्दक सबसे बड़ा मेरा हितैषी है। उसको आंगन में बिठा दें ताकि वो मेरे दोष देखता रहे और मैं उससे अपने दोषों को सुनकर अपने दोषों से निवृत होने की कोशिश करता रहूँ।' हमें कोई एक भी बुरी बात कहता है तो हमें बड़ा दुख लगता है परन्तु कबीर साहब के शब्दों में कितनी गहराई है। आगे कहते हैं कि-'निन्दो निन्दो, मोको निन्दो।' बार-बार इसलिये कहते हैं कि उससे उद्धार होगा।

हम जीवन पर्यन्त सोये रहते हैं। कुम्भकर्ण की जो निद्रा है प्रत्येक व्यक्ति वैसी ही निंद्रा में सोया हुआ है। कुंभकर्ण केवल छः महीने सोता था, और हम....? तो हमें कौन जगायेगा? जो हमारी आलोचना करता है, जो हमारी प्रतिक्रिया करता है, जो हमारी निन्दा करता है, एक प्रकार से वही हमारा हितैषी है, वही सच्चा मित्र है। तो भीतर में घुसकर देखें कि हमारे में कौन-कौन सी कमियाँ हैं और उन कमियों से निवृत होने के लिये प्रयास करते रहना चाहिये। ईश्वर का आश्रय लें, गुरु का आश्रय लें, भीतर में आत्मा है, उसका आश्रय लें। सारा दिन बुराइयों से दूर होने की कोशिश करते रहें, यही परमार्थ का सीधा-सादा रास्ता है। बाकी जितना है, सब विस्तार है।

आपकी इच्छा है जो भी रास्ता चाहें अपनायें परन्तु करना यह ज़रूरी पड़ेगा कि भीतर में जो अवगुणों की मलिनता है उससे मुक्त होना ही पड़ेगा। जब तक व्यक्ति के कर्म और व्यवहार में ये मलिनता है मनुष्य जनम-मरण के चक्कर से नहीं छूटेगा। महाभारत हमारे सामने है। गीता हमारे

Scanned by CamScanner

सामने है; युधिष्ठिर को भी केवल स्वर्ग ही मिला है, उनको भी मोक्ष नहीं मिला। मोक्ष बड़ा दूर है। युधिष्ठिर जैसे व्यक्तियों के लिये भी सिर्फ़ स्वर्ग ही था तो हमारी क्या स्थिति रहेगी- यह बात गंभीरता से सोचनी चाहिए।

आप कहेंगे कि यह रास्ता बड़ा कठिन है। हाँ, मेहनत न करने वाले के लिए बड़ा कठिन है। परन्तु जिसने दृढ़ संकल्प कर लिया उसके लिये कोई कठिन नहीं है। केवल एक ही बात करनी है कि भीतर में जो अहंकार है उसे ईश्वर के चरणों में या गुरु के चरणों में अर्पण कर दें। अपनी मति को छोड़कर गुरु की सन्मति में चलना है!

यही भगवान अर्जुन को समझा रहे हैं। अर्जुन अपनी मति पर चलना चाहता है। विद्वान और बुद्धिजीवी था। ये तो भगवान श्रीकृष्ण की बड़ी कृपा थी अर्जुन पर कि इतना सुन्दर उपदेश दिया। वो पूछे जा रहा है, प्रश्न किये जा रहा है परन्तु भगवान कितने दयालु हैं कि अपने मित्र के लिये कितनी मंगल कामनायें हृदय में रखते है कि थकते नहीं हैं, समझाये जा रहे हैं। अंत में जाकर यही कहा है कि "हे पार्थ, अब तुम कर्म, धर्म सब छोड़ो बस आत्म समर्पण कर दो, अपनी इच्छा को मेरी इच्छा में मिला दो। इच्छा के अनुसार कर्त्तव्य परायण बनो और अपने कर्त्तव्य के साथ आसक्ति मत रखो।" उसे रास्ता बताया है कि कर्म करते हुए अकर्मी हो जाए।

गुरुवाणी में भी आता है 'करम करत हुए निरकामा'। इस प्रकार से कर्म करते जायें तो उसका संस्कार भी नहीं बनेगा। यानि कर्म, अकर्म और विकर्म या निष्काम कर्म भी यही हैं। तरीका तो साधारण है। परंतु व्यक्ति को चेतनता

Scanned by CamScanner

चाहिए, सचेत रहना चाहिए। उधर कर्म का जो फल है वो ईश्वर के चरणों में अर्पण कर दें। निष्काम कर्म के विषय में यही कहना हैं कि कर्म को प्रेम के साथ करो और ऐसे ही प्रेम के साथ करते-करते आपका स्वभाव बन जाये जैसे सूरज का स्वभाव है, ईश्वर का स्वभाव है। सूर्य सबको गरिमा देता है; सबको जीवन ज्योति प्रदान करता है परन्तु वो स्वयं नहीं जानता कि मैं क्या कर रहा हूँ। कर्म वो भी कर रहा है। ईश्वर भी इसी प्रकार कर्म कर रहा है।

भगवान अर्जुन को सिखा रहे हैं कि वह भी इसी प्रकार कर्म करे। "कर्म करके, ना करना। तू अकर्मी बन जा।" ये व्यवहार में बरतने से आयेगा। किसी ने तुम्हें गालियाँ दी हैं उसके साथ भी प्रेम करो, उसको भी ईश्वर रूप मानो। सूफ़ी संत बाबा फ़रीद जी कहते हैं - "जो तुम्हारी पिटाई करे तुम उसके घर में जाकर उसके हाथ-पाँव दबाओ।" ये अकर्म से एक चरण आगे है। कर्म करें तो ऐसे करें कि सबको ईश्वर-रूप समझ कर करें। और फिर कर्म करते-करते अकर्मी हो जाएँ यानी जो कर्म भी हों, वो अपने आप हमसे हों।

'ब्रम्ह ज्ञानी पर उपकार' - यानी ब्रह्मज्ञानी को पता भी नहीं है परन्तु उसके हृदय से प्रेम का झरना हर समय प्रवाहित होता रहता है। इसी प्रकार परोपकार से आनंद निकलता है, फैलता है और सबको शीतलता और शान्ति प्रदान करता है। सबका कल्याण तो प्रभु का विरद है। ये उसका स्वभाव बना हुआ है। हम भी कर्म जब ऐसे करेंगे तो कर्म का फल या संस्कार हमें नहीं छुएगा। और जो संस्कारों से रहित हो गया वो मुक्त हो गया। गुरुजनों ने सीधा, बड़ा सरल रास्ता बताया

Scanned by CamScanner

है कि कर्म से कैसे स्वतंत्र हो सकते हैं, कैसे मोक्ष को प्राप्त कर सकते है।

महात्मा गांधी ने गीता के अनुवाद में व्याख्या करते हुए उसका नाम 'अनासक्ति योग' रखा है यानी मोह से मुक्ति का योग। हम सब पढ़ते हैं मगर हमसे होता नहीं। ये मन ऐसा बेईमान है कि हमें करने नहीं देता। इसीलिये तो युधिष्ठिर ने एक ही शब्द सीखा ज़्यादा सीखने की ज़रूरत नहीं समझी। जो हमारे रोज़ के काम हैं, वो हम सब निष्काम भाव से करें। दूसरे को सुख पहुँचाने के लिये, फल की आकांक्षा न रखें। फल को कर्मयोग यज्ञ में बलिदान देकर फिर निश्चिंत होकर रात को सोयें और याद नहीं रखें कि सारा दिन क्या किया है। किसी ने हमें बुरा कहा या किसी ने हमे भला कहा या हमने कोई भला काम किया तो उसकी कोई याद न हो।

दान के बारे में संत ज्ञानी लोग समझाते हैं कि खैरात देनी है तो ऐसे कि दायाँ हाथ देता है तो बायें को पता भी नहीं हो। वो तो समझाते हैं परन्तु लोग नहीं समझते, स्वयं को दान से जोड़े रखते हैं। हम हर बात में अपने आपको फँसाते जाते हैं। भगवान हमें अनासक्त करना चाहते हैं, हमको मुक्त करना चाहते हैं परन्तु हम किसी न किसी अवगुण या राग-द्वेष में उलझ जाते हैं, मोह में फंसे रहते हैं।

इसका मतलब यह नहीं है कि हम सेवा न करें, माता-पिता की सेवा न करें, बीबी बच्चों की सेवा न करें। परन्तु माता-पिता, बच्चों की सेवा करें तो जैसे यशोदा व नंदजी कृष्णजी की सेवा करते थे। पहले वो बच्चे की तरह ही सेवा करती थीं परन्तु जब उनको पता लग गया कि ये तो

Scanned by CamScanner

भगवान हैं तो पूजा के रूप में उनकी सेवा करती थीं। माता-पिता बच्चों को प्रभु का रूप समझें और बच्चे माता-पिता को परमात्मा का रूप समझ लें तो कहाँ दुख है? सिर्फ़ व्यवहार को बदलना है।

आज विश्व में हर परिवार में कितना दुख है उसका मुख्य कारण यही है कि माता-पिता और बच्चे एक दूसरे का विरोध करना चाहते हैं। यहाँ तक कि पति पत्नी भी ऐसा ही स्वभाव रखते हैं। ऐसा समय में परिवर्तन आ रहा है कि हमारे जितने शास्त्र या संस्कृति की मान्यताएँ हैं, सब खत्म होते चले जा रहे हैं। मुनष्य का मन जो है, हम उसी मन के पीछे लग रहे हैं। मैं सुख में सुखी रहूँ चाहे सारा संसार दुख में रहे - मुझे कोई परवाह नहीं - ऐसा सोचते हैं।

आदि काल से हमारी संस्कृति ने यही सिखलाया है कि मन के गुलाम न होकर हम संतों का सा जीवन जियें। ये जितने यज्ञ हैं उनका भाव यही है कि सारे संसार को, केवल अपने बच्चों को ही नहीं, सारे संसार को ही अपना परिवार मानकर संसार की शुभकामना करें और उसके साथ हमारी आसक्ति यानी आशा नहीं हो। किसी के साथ हम भलाई करते हैं तो ये मत सोचें कि कोई हमें सलाम करे।

वैसे संसार का सारा काम तो प्रकृति करती है परमात्मा कुछ नहीं करता, वो तो अकर्मी है। काम हो रहा है - उसके जो भी ज़रिये हैं यानी जो सूरज चाँद हैं या प्रकृति के और स्वरूप हैं - उनके द्वारा। मनुष्य को भी वैसा ही बनना है। सबकी सेवा करते हुए बड़े स्वभाविक रूप से संयमित और बड़े अनुशासित होकर रहना है।

Scanned by CamScanner

बच्चे कितने सरल होते हैं। जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं मां बाप उनसे उतना प्यार नहीं करते। छोटे शिशु को हर कोई गोद लेना चहता है। क्या चीज़ है बच्चे में - वही माँस हड्डी का बच्चा है। परन्तु उस बच्चे में सरलता है - उसमें राग द्वेष नहीं है, मेरा तेरापन नहीं है। वैसी ही निर्मल सरल स्थिति के लिये जिज्ञासु को इतनी साधना करनी पड़ती है - भीतर में से मै मेरा निकालने के लिये। लाखों में से कोई एक आदमी सफल होता है जिसके ह्रदय में से मैं और मेरा पन खत्म हो जाता है। परन्तु बच्चों में, शिशुओं में मैं और मेरेपन का भाव होता ही नहीं।

ऐसी सरलता सब साधकों के ह्रदय में आनी चाहिए और व्यवहार में विकसित होनी चाहिए। यह जो बच्चे में सरलता का गुण है उसे ही अपनाने वाले मनुष्य को भी प्रभु आलिंगन करते हैं जैसे नामदेव जी को। और ये सरलता पुस्तकें पढ़ने से नहीं आयेगी। किन्तु जिस पर गुरु की या ईश्वर की कृपा हो और उसका अपना भी सच्चा यत्न हो तो उसे ही ये मन को लुभाने वाली सरलता प्राप्त हो जायेगी। बड़ा कठिन है बूढ़े से बच्चा बनना। पर ऐसे निश्छल सरल रूप पर परमात्मा की प्रसन्नता या कृपा बरस सकती है।

सारांश यह है कि इतने सारे प्रभु के गुणों की चर्चा तो हम कर लेते हैं परन्तु परमार्थ में साधक की सफलता के लिये परमात्मा के गुणों को अपनाना बहुत आवश्यक है। एक भी गुण जैसे दीनता, परोपकार, सरलता आदि यदि पूरी तरह आ जाये तो परमार्थी साधक का कल्याण हो जायेगा।

Scanned by CamScanner

सद्गुणों को अपनाना सीखें

परमार्थ के पथ पर चलने वाले व्यक्ति का आचार व्यवहार सामान्य व्यक्ति से कुछ पृथक होना चाहिए। जो स्वयं को सत्संगी कहता हैं संसार उसको सर से पाँव तक देखता है– कोशिश करता है कि उसमे कोई कमी दीखे। कमी तो हम सब में है और सत्संगी स्वयं भी अनुभव करते हैं कि जैसा ऊँचा व्यवहार हमारा होना चाहिए वह होता नहीं है। बाबा फ़रीदजी कहते हैं कि कोई व्यक्ति यदि तुम्हारी पिटाई करे, तो तुम उसके घर जाकर उसके हाथ पाँव दबाओ। उसकी सेवा करो।

हम सब यही कहेंगे कि यह कैसे हो सकता है। हमें कोई मारे व हम उसके हाथ पाँव दबायें। हमें ऊँची आवाज़ में भी कोई बोले तो वह अच्छा नहीं लगता है, फिर यह कैसे होगा? हम उसके घर जाकर कैसे उसकी सेवा करेंगे? परन्तु जो व्यक्ति फ़रीद जी के आदेश का पालन करते हैं वे महान हैं, वे ईश्वर स्वरूप हैं। यह सत्य है कि सामान्य व्यक्ति ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता परन्तु जो सत्संग में सम्मिलित हुआ है, परमार्थ मार्ग पर चलने की शपथ खाई है उसका व्यवहार संसार से पृथक, आदर्श होना चाहिये। वह आदर्श है कि जो गुण परमात्मा के हैं, सत्संगी को उन गुणों को अपनाना होगा तथा व्यवहार में विकसित करना होगा।

हज़रत ईसा भी कहते हैं बुराई का अवरोध नहीं करो। ठीक है, जो कुछ भी हो रहा है वह ईश्वर की तरफ़ से हो रहा है। ऐसा समझ कर कोई तर्क न करो, स्वीकार करो। वो भी यही कहते हैं – जो तुमसे बुराई करे उससे तुम मित्रता का व्यवहार करो। उदाहरण देते हैं कि कचहरी में आपके खिलाफ़

Scanned by CamScanner

डिग्री हो गई है। आपका कोट जो पहना हुआ था वह डिग्री में ले लिया गया है। ठंडे देशों में एक कोट के ऊपर दूसरा गाउन पहनते थे। हजरत ईसा कहते हैं कोट तो चला गया। यह ठीक है। कोट के ऊपर जो बड़ा कोट पहनते हैं जिसे चोगा कहते हैं वह भी दे दो। हम ऐसा नहीं कर सकते हैं।

ईसा मसीह ने आगे कहा है कि तुम दूसरों के ऐबों को छुपाना, अर्थात उनकी आलोचना या निंदा न करना। अगर तुमने ऐसा नहीं किया है तो परमात्मा भी तुम्हारे ऐबों को क्षमा नहीं करेगा। तुम चाहते हो कि परमात्मा तुम्हें क्षमा कर दे तो तुम्हारी भी सहजवृति हो कि आपके विरुद्ध कोई कितना ही कहीं विरोध करें, पर उसे क्षमा कर देना और यही आपकी सहजवृति बन जाये। सामान्यतः हम कोई भी बात हो उसका तुरन्त उतना ही विरोध कर देते हैं। क्षमा करना तो दूर रहा।

ऐसी अनेकों बातें हैं जो सत्संगी को अपनानी चाहिए। परन्तु उसमें से ये दो - यानी प्रतिक्रिया न करना और क्षमा की भावना महत्त्वपूर्ण बातें हैं। इन पर सभी को ही ध्यान देना चाहिए। ये बातें पारिवारिक जीवन में, सामाजिक जीवन में, दफ़्तर दुकान आदि हर जगह काम आती हैं। परिवार में कई लोग शिकायत करते हैं कि हमारे संबंधी हम से सहयोग नहीं करते, आशा के विरुद्ध व्यवहार करते हैं। व्यक्ति यदि संत महापुरुषों के आदेशों का पालन करेगा तो यह बात उसके मुख से निकलेगी ही नहीं। उस परिवार में जिसमें सभी सदस्य दीक्षित हों उनमें आपस में तनाव रहे यह बात तो शोभनीय नहीं है।

तो यदि हम इन दो बातों को अपनाते हैं तो हमारा निजी जीवन, आंतरिक जीवन बड़ा शान्तिमय रहेगा। हमारा व्यवहार परिवार में, समाज में बड़ा सुन्दर होगा। यह बड़ा कठिन है कोई हमारी निंदा करे, बुराइयाँ करे, हमें गालियाँ दे

Scanned by CamScanner

और हम उसे क्षमा कर दें। बुराई का बदला नेकी में दें यह तो सम्भव होता ही नहीं। बुद्धि तो इसको स्वीकार करती नहीं। परन्तु जो लोग इन बातों को मानने को तैयार नहीं वो परमार्थ से दूर हैं। परमार्थ में जो लचक होती है वह दीनता के रूप में प्रकट होती है। प्रभु को दीनता बहुत प्रिय है।

तो सत्संगी को जिसे इस रास्ते का पंथाई कहते हैं। तभी तो कहते हैं दीन बनना है कि इस रास्ते पर वह चले जो अपना सर हथेली पर रख कर चले। यहां तर्क काम नहीं देगा। वैसे समझाया जा सकता है कि बुराई का बदला नेकी में दें। परंतु जो अधिक तर्क करते हैं वो ऐसा नहीं मानते हैं। लेकिन वो भी कोशिश तो करें। यह बात ग़लत नहीं है कि हम से कोई बुराई करे व हम बुराई का बदला नेकी में दें। पर ऐसा कौन कर सकता है? एक मनोबल वाला - कमज़ोर व्यक्ति नहीं। कमज़ोर व्यक्ति थोड़ी सी बात में ही तुरन्त उत्तेजित हो जाता है। साधक भले ही शरीर से दुर्बल हो परंतु मानसिक शक्ति उसमें बहुत होती है क्योंकि उसके साथ आत्मिक शक्ति है। व्यक्ति यदि ऐसा करेगा तो अपने आप में बड़ा प्रसन्न रहेगा। क्योंकि यदि क्रोध आता है, हमारे मन में किसी के प्रति विपरीत भावना रहती है, तो हम कैसे आशा करें कि हमारे चित्त में शान्ति रहे। कभी नहीं।

तो इन गुणों बातों को हमें अपनाना होगा। तर्क से इसका खंडन नहीं करें, खूब विचार करें इस पर मनन करें। आपको अगर इच्छा है शांति की तो कमसे कम परिवार में तो इसे अपनाएँ। परिवार से बाहर ना सही सत्संग भी एक परिवार है, उसमें तो अपनाँए। हमारे व्यवहार में दीनता होनी चाहिए। दीनता यह नहीं है कि थोड़ी देर काम निकालने को हम मीठे शब्दों का प्रयोग करें। यह दीनता नहीं है। दीनता है

Scanned by CamScanner

एक सहज अवस्था। वह कुदरती प्रकट होती है। हमें कोई उल्टी-सीधी बात कहता है तो बर्दाश्त नहीं होती है या कोई आशा के विपरीत बात कहता है तो अच्छी नही लगती। या कोई ताने या क्रोध के शब्दों में कोई बोलता है तो अगर वह बड़े ने की तब तो स्वीकार कर लेते है परन्तु मन में बुरा लगता है। पर जिसको हम अपने से छोटा समझते हैं वह यदि यह बात कहता है तो बड़ा ही बुरा लगता है।

लोग बाग कहते हैं पूजा में मन नहीं लगता। तो मन को पहले साधना है, योग्य बनाना है। मन योग्य होगा तो ईश्वर के चरणों में इसका ध्यान अवश्य जायेगा। लोग कहते है कि साधना में बैठते हैं तो मन स्थिर नहीं होता है। मन तो प्रेम से ही लगेगा। ईश्वर के साथ हमारा साधारण प्यार भी नहीं है। लोग टी.वी. देखने में व अन्य बातों में बड़े मस्त हो जाते हैं। उसके साथ स्नेह नहीं कर सकते, बातचीत नहीं कर सकते। पर प्रभु के साथ हमारा इतना भी लगाव क्यों नहीं है कि उसका ध्यान भी तो करें।

दूसरे, हमारा व्यवहार शुद्ध नहीं है। योग्य व्यवहार नहीं है इसलिए योग्य विचार नहीं उठते हैं। जो विचार उठते हैं उनसे सत्संगी दुखी होता है। साधारण व्यक्ति उठाये उसे भी दुख होता है। सत्संगी कहता है कि मैने दीक्षा लेली है, पूजा में बैठता हूँ तब भी ऐसे विचार क्यों आते हैं। गुरुदेव फ़रमाया करते थे कि केवल दीक्षा से काम नहीं चलेगा। इसके लिए तो तप करना होगा।

सब भाइयों को चाहिए कि अपने भीतर टटोलें कि आपके विचार और व्यवहार पूज्य गुरु महाराज के, उनके बुजुर्ग पूर्वजों के जीवन के रहन-सहन के अनुसार हैं या नहीं। पूज्य गुरु महाराज की जीवनी है, उनके पत्र हैं। विशेषकर उनके जो पत्र है, कुछ पत्रों में इतना गहरा सबक लिखा हैं, इतनी

Scanned by CamScanner

गहराई में गये हैं कि आप पढ़ेंगे व मनन करेंगे तो आप देखेंगे कि हमने अभी मंजिल की यात्रा तो शुरु ही नहीं की है। इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि हममे गंभीरता नहीं है। (सीरियसनेस नहीं है) जेसे संसार के काम करते है वैसे ही हमने सत्संग को भी समझ लिया है।

किसी को क्या दोष दिया जाये। इसके लिए साधक को तप करना पड़ता है। पू. दादा गुरुदेव के शब्दों में "यह ऐसा नहीं है कि जैसा हम किसी क्लब में मनोरंजन के लिए जाते हैं।" यहाँ भी लोग मनोंरंजन के लिए आते हैं ऐसा तो नहीं है। पर यहाँ आकर जीवन में एक परिवर्तन आना चाहिए 'ट्रांसफ़ारमेशन' होना चाहिए। परिवर्तन कैसा हो? जो ईश्वर के गुण हैं हमारा जीवन उन गुणों को अपनाए। वे व्यवहार में रम जायें। जीवन बार-बार नहीं मिलता है हमें। परन्तु वास्तविकता यहीं है कि जैसा जीवन हमारे दादा गुरुदेव या गुरु महाराज चाहते थे वैसा किसी का नहीं बना। हमारे जितने भी शास्त्र हैं उनके यम-नियमों के अनुसार नहीं बना है। वो सत्संगी को एक आदर्श पुरुष कहलाना चाहते थे।

मनुष्य स्त्री व पुरुष दोनों को ही कहा जाता है परन्तु पुरुष एक विशेष शब्द है। पुरुष परमात्मा और स्त्री माया के लिए प्रयोग होता है। महापुरुष चाहते हैं कि हमारा आदर्श, हमारा व्यवहार और हमारा जीवन भी उस अकाल पुरुष परमपिता परमात्मा की तरह का हो। चाहे साधना करने वाला स्त्री हो या पुरुष, सब को ईश्वरमय बनना है। इसमें जल्दी नहीं करनी चाहिए। मंजिल कहां है किसी ने नहीं जाना, चलते चलिए। गुरु महाराज कहते हैं इस रास्ते पर थकना नहीं चाहिए मंजिल कहां है कोई नहीं जानता, ईश्वर जानता है, चलते चलो। परन्तु संसार के प्रति जितनी जल्दी थकावट आ जाये उतना ही अच्छा है।

Scanned by CamScanner

लोग कहते है शरीर छोड़ने के बाद व्यक्ति का परलोक में उद्धार होगा। वो तो देखा जायेगा। परन्तु अभी ही क्यों न परलोक या स्वर्ग बनाएँ - अपने जीवन में, परिवार में, समाज में। अरविन्द जी के कितने ऊँचे विचार हैं वो कहते हैं कि मोक्ष चोह न मिले, मोक्ष की लालसा नहीं करेंगे, वो सारे विश्व की, पशु-पक्षी व वनस्पति हेतु मोक्ष का विचार और साधना-प्रार्थना करते हैं। उन्होंने एक रसायनशाला में बुद्ध भगवान के अनुरूप मनन किया। वे एकान्त में मनन करते रहे कि समस्त विश्व का कल्याण कैसे हो। किस प्रकार वे सारे विश्व को स्वतंत्र करें। परन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और ही थी उन्हें दीर्घायु नहीं मिली सो इस विषय को अधूरा छोड़ गये। पूरा नहीं कर पाये अपने जीवन में।

सोचने की बात है कि हम कैसे स्वार्थी हैं-अपने लिए ही सोचते हैं अपने शरीर, मन, बुद्धि के लिए या अधिक से अधिक अपने परिवार के सुख की ही बात सोचते हैं। कभी हमने अपने पड़ोसी के लिए सोचा ही नहीं। यह सारा विश्व हमारा पड़ोसी ही तो है। हजरत ईसा कहते है पड़ोसी से प्रेम व्यवहार और सेवा उसी प्रकार करों जैसी अपनी चाहते हो। पड़ोसी का अर्थ सारा समाज है, विश्व है। उसमें मित्र भी आ जाते हैं, शत्रु भी।

ऐसे महापुरुषों की साधना कितनी ऊँची है। करते तो सभी हैं परन्तु कितनी ऊँची है अरविन्द जी की साधना कि सभी को मोक्ष मिलें, सभी का कल्याण हो। उन्होंने लिखा है कि रूस में जब क्रान्ति आई तो उन्होंने तीन साल तक एक प्रकार के विचार का गूढ़ चिन्तन या गंभीर मुआयना लगातार किया है कि किस प्रकार से उस वक्त के बादशाह जार से (जो बहुत ही जालिम था) उसके राज्य से जनता की मुक्ति मिले। हालांकि संत को भले बुरे को नहीं देखना चाहिए। परन्तु वो

Scanned by CamScanner

उस समय एक मुक्तिदाता के स्तर पर थे कि किस प्रकार मानव को सुख पहुंचे, उसका उद्धार हो। उन्होंने लिखा है कि तीन साल वहाँ शक्तिपात करते रहे। आत्मिक शक्ति देते रहे। उस वक्त लेनिन था। बताया नहीं किसी को पर अपना तीन साल तक वहाँ शक्तिपात करते रहे- अपने देश के लिए नहीं, रशिया के लिए। और वह क्रान्ति सफल हुई। यह इनका योगदान था। बाकी बाते और भी थीं जिनके कारण यह क्रान्ति सफल हुई।

ये देखें कि उनका सोचने का ढंग क्या था। वैसे तो सभी कहते हैं कि 'सबका भला करो भगवान।' यह कहना तो ठीक है परन्तु हाथ पांव भी तो ऐसा करके दिखाये, हमारी मन व बुद्धि भी तो ऐसा काम करे। भगवान से कहते हैं 'सब पर दया करो भगवान।' भगवान कैसे करेगा दया - वो हम सब के द्वारा ही तो करेगा। तो देखना ये है कि क्या हमारी वृत्ति में दया आ गई है, सहज ही करुणा आ गई है। तब तो वह रोज़-रोज़ की प्रार्थना करना ही है।

जब प्रार्थना करें तो यह सोचें कि जो कह रहे हैं वो हम अपने आप को सम्बोधन कर रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति के पास शक्ति है कि वह दूसरे में अपने गुणों को रमा सकता है। हम केवल वाचक कहलाने या नाम मात्र के लिये सत्संगी नहीं बनें, वास्तव में सत्संगी बनें, संत का संग जो अपनाता है, तभी सत्संगी कहलाता है। सत्संगी तो वह है जो ईश्वर के गुणों का संग करें, उनको अपनाएँ, व्यवहार में व्यक्त करें।

मेरा आपसे यही आग्रह है कि क्षमा करना, निन्दा न करना दीनता और परोपकार जैसे कुछ ईश्वरीय गुण अपना लें और सचमुच उन्हें अपने व्यवहार में लायें, तो परमार्थ में उन्नति जरूर होगी।

Scanned by CamScanner

स्वनिरीक्षण से सुधार और शान्ति

संसार में समय-समय पर महापुरुष अवतार लेकर आते रहते हैं, बहुधा भारत में और, अन्य देशों में भी प्रकट होते रहे हैं। भगवान गीता में स्वयं भी कहते हैं कि जब-जब धर्म की हानि होती है तो वे अवतार लेते हैं। परन्तु खेद है कि मनुष्य मात्र, हमेशा से दुखी रहा है। कितने सम्प्रदाय हैं, तब भी देश में, विदेश में, आचरण वही का वही है। मनुष्य के भीतर में शान्ति नहीं है। असन्तुष्ट है भीतर में। कई लोग तो अपने आप ही आत्म-हत्या करने पर तेयार हो जाते हैं।

ये स्थिति हमारे ही देश में नहीं है, अमेरिका, यूरोप में और भी बुरी है। मानसिक रोग इन देशों में भारत से कहीं अधिक हैं। धन भले ही इनके पास अधिक हों, विद्या अधिक हो, परन्तु मानसिक तौर पर पश्चिम के लोग हमसे कहीं अधिक अशांत हैं। विज्ञान ने भी उन्नति की हैं, धर्म का भी प्रचार होता है, लाखों नहीं तो हजारों किताबें हर वर्ष छपती हैं। लोग काफ़ी पढ़-लिख गये हैं, तब भी मनुष्य सुखी नहीं है।

ऐसा नही कि आज के समय में ही मनुष्य असंतुष्ट है, दुःख अनुभव करता है। यदि ऐसा होता तो भगवान गीता में क्यों बताते हैं कि सुख के लिये कौन से गुण भक्तों के होने चाहिये। इनमें एक गुण यह भी है कि व्यक्ति, साधक, भक्त, सच्चा भक्त, - साधारण नहीं, आदर्श भक्त बने। इस संबंध में एक गुण यह भी है कि भक्त को संतुष्ट रहना चाहिए। प्रत्येक स्थिति में उसके भीतर में शान्ति बनी रहनी चाहिए।

Scanned by CamScanner

मनुष्य को शारिरीक रोग की दुःख है - मानसिक दुःख है, आर्थिक कठिनाई है, राजनीतिक कठिनाई है और कई प्रकार की कठिनाईयाँ हैं। परन्तु भक्त अपने भगवंत के चरणों में अपनी सुरत को लगाये हुए संतुष्ट रहे तो दुखी न होगा। परंतु ऐसा हो नहीं पाता। न तो भगवान राम के जीवन काल में ऐसा हो पाया, न भगवान कृष्ण के जीवन-काल में ऐसा हो पाया, न अब है।

हमारे देश में या अन्य देशों में लोगबाग पागल से हो रहे हैं। मानसिक रोगी हैं। मानसिक रोग दिन प्रतिदिन बढ्ते ही जा रहे हैं। विज्ञान ने कितनी प्रगति कर ली है परन्तु मनुष्य दुःखी है। और जब आपस में बातें करते है तो सब यही कहते हैं कि 'हम क्या करें' - समाज का कुछ रूप ही ऐसा बन गया है। हमारी सरकार का ढ़ाँचा ही ऐसा बन गया है, सरकारी अफ़सरों का व्यवहार ही कुछ ऐसा बन गया है कि व्यक्ति क्या कर सकता है?

सारे संसार में वह शान्ति कैसे ला सकता है। मानव जब दुःखी होते हैं, सोचते हैं दुःख से निवृत होने के लिये कुछ करना चाहिये। महापुरुष आते हैं, वो कहते है कि राम का नाम लो। और कुछ लोग जैसे देव-समाज संस्था आदि, के आचरण बनाने ईश्वर में तो विश्वास करते नहीं, परन्तु आचरण बनाने में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं उनमें इसके लिये बड़ा ही 'हठ्योग' होता है। वे झूठ नहीं बोलेंगे, अपने व्यवहार में कोई बुरी बात नहीं करेंगे। मेरे पास एक ग्राहक आया करता था फ़िरोजपुर से, देव-समाजी था। पैसे पैसे के लिए बड़ा मुस्तैद, न हमारी तरफ़ रहने देता था, न अपनी तरफ़। आचरण और

Scanned by CamScanner

व्यवहार पर वो बहुत बल देता था। तो कहता था हमारा आचरण ऊँचा होना चाहिए। ये थोड़े से लोग जगह-जगह होते हैं हर इलाके में। और भी ऐसे ही कई सम्प्रदाय स्थापित हुए हैं, परन्तु कोई भी आज तक विश्व में या समाज में शान्ति नहीं स्थापित कर सका।

महात्मा बुद्ध के मन में एक करुणा उन्पन्न हुई कि वो किस प्रकार सारे विश्व को शांति प्रदान कर सकें ताकि प्रत्येक व्यक्ति सुख से रहे उसे न तो आर्थिक कठिनाई हो, न उसके शरीर में रोग हो, न मानसिक रोग हो, न आत्मिकता का अभाव हो। महापुरुष आते रहते हैं, उनके हृदय में करुणा होती है, करुणा के भंडार कहलाते हैं। परमात्मा भी करुणा के सागर हैं। महापुरुष भी करुणा के सागर हैं। परन्तु कितनी सफलता मिली उनको ? पिछला इतिहास हमें ज़्यादा मिलता नहीं। गौतम बुद्ध का इतिहास मिलता है। उसके बाद महाराज अशोक ने कोशिश की कि भारत में शान्ति हो। बड़े-बड़े नियम लिखे गये स्तम्भों पर। बड़े अच्छे नियम लिखे हैं, जो बता देने के लिये तो बड़े अच्छे हैं परन्तु वास्तविक रूप में हमारे देश में या विदेश में अपनाएं नही गये हैं।

उससे पूर्व हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रयास किये। वेदान्त का प्रचार किया। उपनिषदों का प्रचार किया। बुद्ध से, पहले परन्तु उससे भी जनता का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ क्योंकि जनता का विभाजन कर दिया गया था। ऊँची शिक्षा, ऊँची विद्या, केवल सीमिल लोगों के लिये रह गई थी। ना चाहते हुये भी यह बात समाज में आ गई। यह हमारा दुर्भाग्य रहा। विद्या इतनी ऊँची कि आज हम गर्व करते हैं अपने ज्ञान पर,

Scanned by CamScanner

उपनिषदों पर। परन्तु व्यवहारिक तौर पर उनका सार अपने जीवन में हम उतार नहीं पाये। शंकराचार्य ने कोशिश की। उनके गुरुदेव ने, उनके दादा गुरुदेव ने देश के कोने–कोने में जाकर मठ बनाए, अपने केन्द्र खोले। उन्होंने जितनी सेवा की अन्य किसी सन्यासी न नहीं की। परन्तु उसका लाभ समाज ने पूरी तरह उठाया नहीं।

उन्होंने भी एकता का प्रचार किया, ताकि मनुष्य एकता के भाव को रोम–रोम में बसा लें कि मैं और प्रभु एक हैं, मैं और विश्व एक हैं, मैं और जीव–जन्तु और भी जितनी स्थूल वस्तुयें पत्थर आदि हैं, सब एक हैं ऐसा प्रचार किया। तू वही है – मैं वही हू – वो बात तो सही है। तत् त्वम असि तथा अहं ब्रह्मास्मि और 'सः ब्रह्म अस्ति'। के सिद्धांत को बहुत प्रचार किया। परन्तु उनका प्रचार भी कुछ बुद्धिजीबी व्यक्तियों तक सीमित रहा और अधिक समय तक नहीं चला।

बाद में संतमत की लहर चली। कबीर साहब ने प्रचार किया। गुरु नानक ने प्रचार किया। अपने देश में तो उन्होंने सब जगह का भ्रमण किया ही। वे विदेश में भी गये – काबुल, मक्का–मदीना, ईरान, ईराक आदि। कहते हैं वो चीन भी गये, इन्डोनेशिया और लंका भी गये और व्यवहारिक जीवन में सुन्दरता लाने का प्रचार किया। ऊँची–ऊँची बातें कीं, हर समाज में सब लोग एकता से रहें। क्योंकि बिना एकता के प्रसन्नता या शांति नहीं मिल सकती। बाप अमीर हैं और बच्चें गरीब हैं तो बच्चों को कैसे सुख मिलेगा। इसी तरह देश में अगर राजा बड़े सुख से रहता है और उसकी प्रजा भूखी रहती है तो शान्ति कहाँ होगी। राजा तो प्रजा के साथ पिता बनकर

Scanned by CamScanner

व्यवहार करे, ताकि हर व्यक्ति को सुख मिले, समाज में शान्ति हो।

उनका मुख्य साधन योग या कर्मयोगी जैसा था। कबीर साहब ने भी उनकी वाणी पढ़ी। इसी तरह रामानंदजी गुरु रामदास जी, रामदेव जी तथा अन्य संतों की उत्तर भारत में और दक्षिण भारत में, महाराष्ट्र में, सभी जगह 15 से 17वीं शताब्दी में संतों की लहर चली। खेद है कि इधर के रहने वालों में अपने संतों के प्रति कुछ तो ज्ञान है, परन्तु दक्षिण के संतों का ज्ञान नहीं के बराबर है।

महाराष्ट्र में जो संत हुए हैं, ज्ञानेश्वर जी, एकनाथ जी, तुकाराम जी तथा अन्य संत, उनकी जीवनियों का हमें विशेष ज्ञान नहीं है। बड़े उच्च कोटि के लोग हुये हैं, उन्होंने भी बड़ी कोशिश की है कि संसार में सबको शांति मिले। परन्तु सफलता नहीं मिली। अंग्रेजी में कहते हैं - Charity begins at homes' यानी व्यक्ति पहले अपने आपको सुधारे। दूसरे के दोष न देखे, अपने दोष देखे। स्वयं निरीक्षण करे कि उसमें कौन-कौन सी कमी है। ये बात है तो सनातन संस्कृति के अनुसार परन्तु इसका अधिक उपयोग नहीं किया गया। ऐसा नहीं कि स्व-निरीक्षण करने वाले नहीं मिलते, परंतु आज समाज में अपने आप को कोई देखने को तैयार नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति में अहंकार की रावण-वृत्ति आ गई है। कोई नहीं कह सकता, चाहे साधारण व्यक्ति है या पढ़ा-लिखा व्यक्ति है। पूज्य गुरु महाराज तो यहाँ तक कहा करते थे कि जो अपने आप को बड़े संत कहते हैं, उनमें भी सूक्ष्म अहंकार होता है और वे बड़े आदमी होते हुये भी बड़ी ग़लतियाँ करते

Scanned by CamScanner

हैं। आप कहा करते थे कि समाज सामान्य व्यक्ति की ओर नहीं देखता है। जो लोग अपने आपको सत्संगी कहते हैं, समाज उनको सर से लेकर पाँव तक देखता है कि इनमें कौन सी विशेषता है। विशेषता तो समाज को नज़र आती नहीं, उनका दोष दिखाई दे जाता है। इसलिये पूज्य गुरु महाराज फ़र्माया करते थे कि प्रत्येक सत्संगी को अपने आपको छिपा कर रहना चाहिये। शोर नहीं मचाना चाहिये कि मैं सत्संगी हूँ, क्योंकि हममें बहुत कमियाँ हैं। उनके कारण सत्संगी तो बदनाम होगा ही सारा सत्संग भी बदनाम हो जायेगा।

सारे विश्व में पढ़े-लिखे और मज़हबी लोगों (धार्मिक व्यक्तियो) ने बड़े-बड़े युद्ध किये हैं। बहुधा लड़ाइयाँ पढ़े-लिखे व्यक्ति ने की हैं विशेषकर जब हम यूरोप का इतिहास पढ़ा करते थे तो कहते थे कि ये क्या पढ़ाई है। आप यूरोप का और ख़ासकर इंग्लैड का इतिहास पढ़ें, तो आप देखेंगे कि पोप और राजा की लड़ाई होती ही रहती थी। जिस तरफ़ पोप होता था उसी के विरुद्ध राजा होता था - यानि सैंकड़ों वर्ष पोप और राजा में लड़ाई होती रही। लाखों आदमी मारे गये इस धार्मिक युद्ध में। हमारे देश में भी धर्म के नाम पर युद्ध हुए। इसके बाद लोगों ने समझा कि (Charity begins at home)। अन्य व्यक्तियों को छोड़ दो, समाज को छोड़ दो, राजा को छोड़ दो। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपने को सुधारना चाहिये। इसी से शांति बनी रह सकती है।

इसी आशय को लेकर महात्मा गांधी प्रवचन दिया करते थे। उनकी भी संसार बड़ी आलोचना करता है। अहिंसा, अहिंसा बात करते हैं, रोज़ तो हत्यायें होती हैं। उस वक्त (उग्रवादी) भी

Scanned by CamScanner

क्रांन्तिकरी थे - कांग्रेस में या बाहर भी, क्योंकि उस वक्त हम लड़ रहे थे। अंग्रेज़ उनको उग्रवादी कहते थे। ब्रिटिश राज इतना मज़बूत था, कि उसको निकालने के लिये जनता तड़प रही थी। महात्मा गांधी कहते थे कि अहिंसा से चलो। हिंसा की ज़रूरत नहीं है। इन कत्लो की ज़रूरत नही है। जवाहरलाल नेहरू ने भी महात्मा गांधी का विरोध किया। सुभाष चन्द्र बोस तो छोड़कर ही चले गये। उन्होंने आज़ाद-हिन्द फ़ौज बनाई।

देश की आज़ादी के लिये इसी तरह सैकड़ों लोगों और नेताओं ने बहुत कुर्बानियाँ दीं, परंतु महात्मा गांधी डटे रहे। उन्होंने कहा कि स्वराज मिलेगा तो अहिंसा से। वे कहा करते थे कि यदि मेरे जीते जी एक व्यक्ति भी मेरी आशा के अनुसार अहिंसक बन जाये तो मैं अपने प्राण सुख से छोड़ पाऊंगा और इस आशा से छोड़ूँगा कि मेरे पीछे भारत को किसी प्रकार की हानि नहीं होगी। उनके भीतर देश का बहुत ही प्यार था और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के साथ था। वह सदा 'राम और 'रामराज्य' की बात करते थे। उनके जीवन का अंतिम शब्द भी यही - 'हे राम' था

कहने का अर्थ है कि गांधी जी ने भी यही कहा। हज़रत ईसा ने भी यही कहा। महापुरुषों ने अपना बलिदान दिया ताकि लोगों को प्रेरणा मिले कि मनुष्य अपने आप को सुधारे। तो हमें क्या करना है ? हमें महात्मा गांधी जी से महापुरुषों से प्रेरणा लेनी है। प्रेरणा लेकर अपने आप को सुधारना है। सर्वप्रथम यह सिद्धांत अपनायें कि भूलकर भी हम किसी की प्रतिक्रिया नहीं करें। ख़ासकर दोष तो कभी नहीं देखें। दोष देखने हों तो अपने देखो। जीवन सच्चें अर्थो में धार्मिक नहीं

Scanned by CamScanner

होगा जब तक कि व्यक्ति भीतर से निर्मल नहीं हो जाता, गंग नीर की तरह निर्मल नहीं हो जाता; उसके संस्कार खत्म नहीं हो जाते, उसके भीतर में से द्वंद्व और अवगुण खत्म नहीं हो जाते।

सबसे बड़ा अवगुण अहंकार का है और अहंकार के कारण अज्ञान उत्पन्न होता है। अज्ञान के कारण हम मोह में फँस जाते हैं। इस मोह से अनासक्त कराने के लिये, भगवान ने अर्जून को उपदेश दिया। भगवान ने ही नहीं और भी जितने महापुरुष आये, उन सभी ने इसी प्रकार का उपदेश दिया। परन्तु व्यक्ति सुधरने में सफल नहीं हुआ।

सफल होने का एक और सरल रास्ता है। सारे विश्व की चिन्ता न करिये। सारे जगत का सुधार हो पायेगा या नहीं हो पायेगा, ये तो परमात्मा पर निर्भर हैं, अवतारों या महापुरुषों पर निर्भर हैं। परंतु व्यक्ति को अपने सुख के लिये अति आवश्यक है कि वो अपने आपको देखे। स्वयं का निरीक्षण करें सुधारें। भूलकर भी दूसरे की आलोचना न करे, उसके दोष नहीं देखे। यदि दोष देखते हैं तो वो दोष हमारे भी होते हैं।

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि जो दूसरों में दोष देखता हैं तो वही दोष उसके अपने हो जाते हैं। वो अपने ही दोषों को दूसरे में देखता है। ये बात सही है। हमें दूसरे में क्यों दोष दिखते हैं क्योंकि हम स्वयं दोषी हैं, पर यह मानना बड़ा कठिन हैं। हमारे महापुरुषों ने इसलिये तप किये और ऋषियों ने यज्ञ किये है। अपने आपको निर्मल करने के लिये।

हम गंगा जी जाते हैं निर्मल होने के लिये। वहाँ केवल

Scanned by CamScanner

स्नान नहीं करना हैं। स्नान करना है। भीतर में, जो भी अवगुण है, मलीनता है, उसे गंगा के निर्मल जल से धोना है अर्थात अपने आप को ज्ञान से भीतर में शुद्ध करना है – अपने आप को। प्रेम की धारा से पवित्र करना है।

यह सुधार केवल बातों से नहीं होगा। महात्मा गांधी का कहना ग़लत नहीं था कि यदि एक आदमी पूर्ण बन पाता है तो वह अपना कल्याण तो कर ही सकता है, विश्व का कल्याण भी कर सकता है। आप कहेंगे कि वो कैसे होगा ? तो इसका उत्तर है कि अग्नि का एक कण सारे जंगल को जला देता है। इसी तरह व्यक्ति यदि निर्मल हो जाये तो वह संसार का कुछ–न–कुछ कल्याण अवश्य करता है।

सूर्य क्या करता है? सूर्य सारे विश्व को प्रकाश देता है। उसको कुछ नहीं करना पड़ता है। वो अगामी है। भगवान, ब्रह्म, परमात्मा अगामी है। वो व्यक्ति भी अगामी बन सकता है। सूर्य की तरह बन सकता है। उसके भीतर से आत्मा का प्रकाश निकल कर सारे वातावरण में फैलता है। और ये सहज स्वाभाविक रूप से होता है। ऐसे ही निर्मल, चरित्रवान लोगों को संत कहते हैं।

हम भी दृढ़ संकल्प करें कि हम अपने आप को निर्मल करेंगे। हम दुनियाँ की आलोचना नहीं करेंगे। सुबह से लेकर शाम तक हम अख़बार पढ़ते हैं, रेडियो सुनते हैं, सब जगह पर प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया। कहीं नही देखा, सुना या पढ़ा जाता कि कोई व्यक्ति अपना स्व–निरीक्षण करता है – यानि तप करता हो। परन्तु कितने ही महापुरुष घर छोड़कर

Scanned by CamScanner

गये, तप करने के लिये। हाँ परमात्मा तो भीतर में है और बाहर में भी है। हमारे लिये तो वो अति आसान तप यही है कि अपने आप को अधिकारी बनायें। निर्मल करें ताकि हमारी आत्मा और परमात्मा एक हो जायें। भीतर में से हमारा अहंकार निकल जाये। हम जो यह सोच रहे है कि हम अलहदा हैं, संसार के लोग अलहदा हैं, मेरे से अलहदा हैं, परमात्मा से अलहदा हैं- ये सब भूल है।

हम जब स्व-निरीक्षण करेंगे, तो निर्मल होते जायंगे। जब सौ-पचास आदमी विश्व में ऐसे हो जायें तब हर जगह उनका ही प्रकाश फैलेगा। ये अरविन्द घोष भी चाहते थे। व्यक्तिगत तौर पर उन्होंने सफल कोशिश भी की और कुछ प्रकाश भी दिया कि किस प्रकार पहले युद्ध में रूसी क्रान्ति द्वारा ज़ार के अत्याचारी राज्य से जनता को छुटकारा दिलाया। उन्होंने पाण्डीचेरी में बैठे हुये फ्रान्स और जर्मनी के भी उन खतरनाक जनरलों का सुधार किया।

स्व-निरीक्षण ही साधक का प्रथम महत्त्वपूर्ण साधन है। कोई भी धर्म हो, उसका मुख्य साधन है - अपने आप को भीतर में झाँकना और सुधारना। भीतर में झाँकने पर ही जब व्यवहारिक रूप से सुधार होगा तब सिद्ध होगा महापुरुषों का ये उपदेश कि *'Charity egins at home'*। हम निरन्तर प्रयास एवं अभ्यास करें कि किसी को उपदेश न दें, स्व-निरीक्षण करते रहें। स्वयं, सुधरें और शांति व आनंद पायें और उन्हें अपने चारों ओर फैलाते रहें।

Scanned by CamScanner

अहंकार त्यागें, दीन सेवक बनें

नामदेव जी का एक सुन्दर भजन है :

दूध पियो मेरे गोविन्द राये, दूध पियो....
दूध कटोरे गडवे पानी, कपला गाय नामे को हानी
दूध पियो मेरे गोविन्द राये, दूध पियो....

महाराष्ट्र के भक्त नामदेव जी की वाणी में 'दूध पियो मेरे गोविन्द राये' पद में बड़ी सुन्दर कथा है। उस बालक में आस्था है, सरलता है बड़ी उच्च कोटि की भक्ति है। पुजारी पिता कह जाता है कि 'मैं बाहर जा रहा हूँ, मेरे पीछे भगवान को स्नान कराना, पूजा आदि कराना और उनको दूध पिलाना।' बालक ऐसा ही करता है परन्तु भगवान की मूर्ति दूध सेवन कहाँ करती। बच्चा बारबार कहता है कि 'पिता जी के सामने तो आप दूध स्वीकार कर लेते थे मुझसे क्यों नहीं करते?'

पिताजी ने जो कर्त्तव्य उसके सुपुर्द किया था उसे पूरा करने के लिये पहले उसने सरलता के साथ भगवान को कहा परन्तु नहीं माने तो कहने लगा – कि, 'मेरे पास अब कोई उपाय नहीं है, मैं डंडा लाता हूँ। देखता हूँ प्रसाद कैसे नहीं खाओगे।' भक्त वत्सल भगवान बच्चे की सरलता देखकर बड़े प्रसन्न हुए और साक्षात् प्रकट होकर दूध पी गये।

आध्यात्मिकता में सरलता के गुण का एक विशेष महत्व है। सरलता उसी व्यक्ति में होती है, जिसके हृदय में राग द्वेष नहीं होता। जिसके मन में अहंकार चिपका नहीं होता है। जितना छोटा बच्चा होता है वह उतना ही सरल होता है क्योंकि उसका किसी के साथ राग द्वेष नहीं है। वह सब की गोद में

Scanned by CamScanner

चला जाता है और मुस्कान प्रदान करता है। भगवान प्रसन्न हुये हैं और बालक नामदेव से दूध स्वीकार किया है, आशीर्वाद दिया है। नामदेव जी बड़े होकर भी भगवान विट्ठल (विष्णु के स्वरूप) की पूजा करते रहे। भगवान से आप साक्षात् बातचीत किया करते थे। जब इनको कोई कठिनाई आती थी तो ये भगवान से पूछते थे कि 'अब मैं क्या करूँ?' जैसे एक बच्चा अपने माँ-बाप के साथ बातचीत करता है या जैसे आपस में मित्र होते हैं वैसे ही ये भगवान के साथ कई वर्षों तक नित्य सरलता से बातचीत करते रहे।

आध्यत्मिक पथ में कई कठिनाइयाँ आती हैं। ऊँचे फ़कीरों को, ऊँचे सन्तों को भी बाधाएँ आ जाती हैं और उसका कारण होता है उनका सूक्ष्म अहंकार। एक बार ज्ञानदेवजी के मन्दिर पर संतों का समागम हुआ जिसमें आप को भी निमन्त्रण मिला, अन्य संत भी वहाँ एकत्रित हुए। उनमें गोरा नाम का एक कुम्हार था। वे जब घड़े पक जाते तो एक छड़ी के साथ टकटका कर देखा करते थे कि घड़ा पका है कि नहीं। ज्ञानदेव जी एकत्रित साधुओं को दिखाकर उनसे पूछने लगे कि, 'ये घड़े आपके सामने हैं - देखें कौन सा घड़ा पका है तथा कौन सा घड़ा कच्चा है' (अर्थात किसने साधना में परिपक्वता प्राप्त करली है और कौन अभी कच्चा है, साधना में परिपक्व नहीं हुआ)। गोरे कुम्हार ने अपनी लकड़ी लेकर सबके सर पर मारी और सब को कह दिया कि ये तो पके हुए घड़े हैं।

जब नामदेव जी की बारी आई तो उन्हें भी छड़ी मारी और संत गोरा कुम्हार ने कहा ये घड़ा कच्चा है तो उनको बुरा सा लगा कि मैं तो भगवान को इतना चाहता हूँ और उनसे बातचीत भी करता हूँ। मेरी साधना तो बहुत ऊँची है, इतनी

Scanned by CamScanner

ऊँची साधना तो शायद इनमें से किसी की भी नहीं हैं। इसपर ज्ञानदैव जी ने उन संत से कहा कि पुनः देखिये। उन्होंने पुनः छड़ी लगाई और यही कहा कि यह घड़ा कच्चा है।

नामदेवजी बड़े परेशान हुये और अपमानित भी हुये। और उन्होंने भगवान के पास जाकर कहा कि 'मै आपके साथ मित्रता का व्यवहार रखता हूँ आप मेरे साथ बात-चीत करते हैं और ये लोग कहते हैं कि मैं तो कच्चा हूँ - यह भी कोई बात है?' भगवान ने कहा कि कुम्हार ने बात तो सच ही कही है। तब नामदेव जी कहने लगे कि 'आपने मुझे अंधेरे में क्यों रखा? भगवान, अब मैं क्या करूँ?' भगवान ने बताया कि, एक फ़कीर है उसके पास चले जाओ।

नामदेव चल पड़े हैं पर परेशान रहे हैं कि मेरी इतने साल की तपस्या, साधना तथा भक्ति का कोई असर नहीं, मैं कच्चा ही रहा? वहाँ पहँचे तो वहाँ क्या देखते हैं कि फ़कीर नग्न है कोई वस्त्र नहीं पहने है। बड़ा मलीन सा है और लेटा हुआ है। एक पाँव ज़मीन पर है और दूसरा पाँव भगवान शिव के, शिवलिंग के पास पड़ा है। इनको और भी बुरा लगा कि ये कैसे भक्त हैं, क्या यही भक्ति का रूप है?

नामदेव जब ऐसा सोच ही रहे थे तो उस फ़कीर ने पूछ लिया कि, 'आपको भगवान विट्ठल ने भेजा है'? इन्होंने कहा 'हाँ भेजा तो है।' फिर सोचा कि ये तो कोई पहुँचा हुआ फ़कीर मालूम होता है अन्यथा इसको कैसे मालूम हुआ। पर नामदेवजी ने पूछा कि 'आपने यह क्या तमाशा बना रखा है? भगवान शिव के पास ऊपर आपने अपना पैर टिकाया हुआ है, ये क्या है?' तो फ़कीर कहता है - 'ठीक है तुम मेरा पाँव जहाँ चाहो, मर्जी से उठाकर कहीं और रख दो।'

Scanned by CamScanner

नामदेवजी पाँव उठाते हैं तो देखते हैं कि भगवान का जो शिवलिंग है पाँव उसी पर पड़ जाता है। कई बार उन्होंने ऐसा किया। प्रत्येक बार यही देखा कि उनके पैर के नीचे भगवान शिव का शिवलिंग है। कुछ थोड़े से रुष्ट भी हुये। आखिर उन्होंने फ़कीर का पाँव अपने सिर पर रख लिया पैर सिर पर रखना ही था कि नामदेव जी ने साक्षात् देखा कि वो तो स्वयं भगवान शिव के ही रूप हैं। और फिर भगवान विट्ठल की विशेष कृपा से उनका अपना ही रूप प्रकट हो गया। यहाँ आकर उनका सूक्ष्म अहंकार समाप्त होता है।

ऐसी ही घटना गुरु नानक देव जी के जीवन काल में भी हुई थी। जब वो मक्का शरीफ़ गये तो जिधर काबा था उस तरफ़ पाँव करके सो गये। वहाँ का मुल्ला आया तो उसने देखा कि ये कौन व्यक्ति है जो काबा की तरफ़ पैर किये हुये है। बड़ा नाराज़ हुआ और पाँव घसीटकर दूसरी तरफ़ कर दिये। इस पर 'संगे असवद' मक्का का रुख भी उधर ही हो गया।

अपने भक्त को यह लीला दिखाकर प्रभु ने जताया कि भक्ति या साधना का सार क्या है? तू वो ही है जो मैं हूँ। परमात्मा सर्वसमर्थ है, सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है। इन्होंने क्षमा मांगी फिर भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। भगवान ने कहा है कि 'अच्छा, अब तुम जाओ और भ्रमण करो, दिशा-दिशा विचरो।' ये विचरते हुये पंजाब में गुरदासपुर के इलाके में आकर बसे हैं और अपनी वाणी में लिखा भी है कि "तुमरे विट्ठल नहीं संसारा" (सिवाय विट्ठल के, भगवान के, अन्य कुछ भी नहीं) सभी जगह वो ही है, कण-कण में रोम-रोम में।

"मन में राम, तन में राम, रोम-रोम में राम ही राम" पर ये केवल कहने मात्र न हो - ऐसा अनुभव हो। ये साधना

Scanned by CamScanner

की शिखरता नामदेवजी ने बतलाई है। परमात्मा जानता है कि इसके आगे भी क्या कुछ और है क्यों कि आध्यात्मिकता की कोई सीमा नहीं है। यह विद्या कहाँ जाकर अन्तिम चरण में पहुँचती है, कुछ नहीं कहा जा सकता।

कबीर साहब के पास जहाँगश्त बादशाह गये हैं कबीर साहब के पास कई सप्ताह रहे हैं। (देखें, गुरु महाराज की पुस्तक 'गुरु शिष्य संवाद')एक दिन उनकी समाधि लग गंई। उस समाधि-अवस्था में, सुषुप्ति अवस्था में, स्वप्न अवस्था प्रगट हुई। उसी अवस्था में उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के अद्भुत अनुभव किये जैसे कभी आकाश में उड़ते जा रहे हैं। बड़ी-बड़ी अच्छी हस्तियों से भेंट हो रही है। बड़े सुन्दर नजारे हैं। उन दृश्यों में बड़ा ही आकर्षण था, आनंद था। कबीर साहब जहाँगश्त से कहते हैं - 'इतने दिन हो गये यहाँ कथा, प्रवचन सुनते हुये, परन्तु तुमने मुझे समझा हीं नहीं।' तब जहाँगश्त ने उनको अपनी स्वप्न समाधि' की बात कह दी।

सुनकर कबीर साहब ने फ़रमाया स्वप्न अवस्था तो बहुत नीची अवस्था है, सूक्ष्म मन का स्थान है। इसके आगे सुषुप्ति है जहाँ सब इन्द्रियाँ सो जाती हैं - उनकी क्रिया स्थगित हो जाती है परन्तु वो भी तामसिक स्थिति है। सोने वाले को कुछ पता ही नहीं होता कि क्या अवस्था है। जब जागता है तब कहता है कि आज तो नींद बड़ी अच्छी आई। कुछ नहीं कह सकता वो कि क्या अवस्था थी, 'बस आनंद मिला' केवल इतना ही कह सकता है। और उन्होंने 'जागृत सुषुप्ति पर जोर दिया है और समझाया हैं कि ईश्वर और गुरु की सच्ची पूजा क्या है। ईश्वर के गुणों को स्मरण करना, उनको सराहना, स्तुति करना, ग्रहन करना - ये गुरु या ईश्वर की पूजा है।

Scanned by CamScanner

धीरे-धीरे दैवी गुण अपने आचरण में अंकित हो जावें अर्थात जो ईश्वर के गुण है वो ही साधक के गुण हो जावे। जो गुरु का रूप है वो ही साधक का रूप हो जावे, दोनों में कोई अन्तर न रहे - वो है वास्तविक गुरु दर्शन। किन्तु कहना नहीं चाहिये, ये भी सहज अवस्था नहीं है। यहाँ पर पहुँच कर भी कई लोग अपने पद से कुछ समय के लिए गिर जाते हैं।

साधक को एक दफ़ा अनुभव हो जाता है ज़्यादा तो नहीं होता। सहज अवस्था भी नहीं आ पाती है जब तक भीतर में से वासनाएं, संस्कार, इच्छाएँ, आसक्ति हमेशा के लिए समाप्त नहीं हो जाती हैं। तनिक भी किसी प्रकार का दोष नहीं रह जाता है। कबीर साहब जैसे महापुरुष तो ललकार कर कह सकते है कि 'मुझे अब कुछ करने की ज़रूरत नहीं है'। परन्तु बड़े-बड़े संत साधु पुरुष डरते हैं। ऐसी अवस्था पर पहुँचकर भी वो या तो सेवक बन जाते हैं या कान्ता भाव को अपना लेते हैं।

कबीर साहब ने सेवक का भाव अपनाया है। गुरु नानक देव ने सेविका का भाव अपनाया है - मिले हुये भी हैं और अलहदा भी हैं। ऐसा करने से अहंकार नहीं होता और यदि कोई वासना रह भी जाती है तो वह धीरे-धीरे खत्म हो जाती है। नामदेवजी ने तो अपनी वाणी में स्वयं लोगों को चेताया है कि चाहे वो किसी भी प्रकार की साधना करें। उन्होंने दीन-भाव सिखाने वाली भक्ति की साधना बताई है, कभी नहीं कहा कि 'मैं पूर्ण हो गया'। नामदेव जी ने भक्ति, प्रेम और ज्ञान तीनों को अपनाया। पहले प्रेम को अपनाया है, फिर ज्ञान की ज़रूरत पड़ी है। आदि शंकराचार्य जी जैसे परम ज्ञानी ने भी बाद में भक्ति को अपनाया है। सब महापुरुषों ने ऐसा ही किया है। भक्ति में दीनता है अतः गिरने का भय कम रहता है।

Scanned by CamScanner

इस रास्ते पर कभी भी संतुष्ट नहीं होना चाहिये। पूज्य गुरु महाराज जी कहा करते थे कि 'दुनिया के रास्ते में तो थक जाना चाहिये – अच्छा है थकावट आ जाये, परन्तु रूहानियत में (आध्यात्मिक पथ पर) कभी भी थकावट का नाम नहीं लेना चाहिये अर्थात ये नहीं कहना चाहिये कि बस ये अन्तिम मंज़िल है, मैं पूर्ण हो गया।) यह तो कोई नहीं कह सकता है सिवाये परमात्मा के, क्योंकि और कोई पूर्ण नहीं है। इसीलिये पूज्य गुरु महाराज कहा करते थे कि सच्चे ईश्वरीय शक्ति वाले समर्थ गुरु 800 या 1000 वर्ष बाद प्रगट होते हैं। अर्थात परमात्मा स्वयं किसी संत महापुरुष का रूप धारण करके आते है और संसार का उद्धार करते हैं। बाकी और जितने महापुरुष हैं वे तो सेवक हैं, कुछ गुरु हैं या गुरुमुख हैं।

अध्यात्म विद्या में आगे बढ़ने वालों को सेवक बने रहना चाहिये, दास बने रहना चाहिये। पूज्य गुरु महाराज जी कहा करते थे कि जिसने ये कहा कि मैं गुरु बन गया वो गया और कहा करते थे कि गुरु बनना बड़ा कठिन है। और ये बात सही हे। जब तक ईश्वर कृपा न हो ऐसा व्यक्ति संसार से अछूता नहीं निकल पायेगा। ये भी ईश्वर की कृपा ही होती है वरना माया तो क़दम–क़दम पर आक्रमण करती है, परीक्षा लेती है। भगवान शिव की भी परीक्षा ली है, भगवान राम और भगवान कृष्ण की भी परीक्षा हुई है। ये माया किसी को भी नही छोड़ती।

अतः साधकों को तो सबसे सरल दीनता की राह अपनानी चाहिए। प्रायः सभी महापुरुष यही लिखते आये हैं :

"कहु नानक मोहे कोई गुन नाही, हे प्रभ राखो अपनी शरण में"।

Scanned by CamScanner

गुरुकृपा के लिये निर्मल होना होगा

पूज्य गुरु महाराज कहा करते थे कि सत्संगी को स्व-निरीक्षण करना बहुत आवश्यक है। अपनी कमजोरियों को देखों, दूसरों की बुराईयों को मत देखो। उनका यह आदेश था कि यदि कोई व्यक्ति आकर आपसे आपके किसी मित्र या किसी अन्य व्यक्ति की निन्दा करता है तो कल वह व्यक्ति किसी दूसरी जगह जाकर आपकी भी निन्दा कर सकता है। ऐसे मनुष्य के स्वभाव को अच्छी तरह समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति निन्दा सुनने में आनंद लेता है, तो उसका चित्त दूषित होने से उसकी साधना में विघ्न पड़ेगा। साधकों को, यदि कहीं ऐसी आलोचना हो रही हो तो वहाँ से उठ जाना चाहिये। साधारणतया लोगों का यह स्वभाव बन गया है चाहे वह सत्संगी हों या अन्य व्यक्ति कि दूसरे के दोष देखते हैं और उनकी बढ़ा-चढ़ाकर चर्चा करते है।

हिमालय पर्वत पर दो व्यक्ति साधना कर रहे थे। एक और व्यक्ति आया है। वह उनसे एक व्यक्ति की स्तुति करने लगा तो दूसरे को बुरा लगने लगा। साधकों को सतर्क रहना चाहिये कि किसी की बुराई न तो सुनें, न करें, न उसमें आनंद लें। छोटी सी आलोचना में हमें अच्छा नहीं लगता। हमारी इच्छा के प्रतिकूल किसी ने कुछ बात कह दी तो बुरा लगा। बरसों की कमाई क्षणों में खत्म हो जाती है। साधना में और दिनचर्या में समन्वय होना चाहिये।

Scanned by CamScanner

हमारे जितने कर्म हों, जितने विचार हों, आत्ममय हों। जब इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है तो क्रोध आता है। उससे प्रत्येक साधक को सावधान रहना चाहिये। जैसे बाढ़ लगाते हैं फुलवारी की रक्षा के लिये, उसी तरह अपने आप को संयम में रखना चाहिये। इन्द्रियों के जो विषय हैं उन्हें संयम की सीमा में लाना आवश्यक है।

हमारे जो विचार हों, कर्म हों सब उपासनामय होने चाहिए। यह क्या साधना हुई कि दस-बीस मिनट सुबह शाम पूजा में बैठ गये और यदि इच्छा नहीं हुई तो बैठे ही नहीं। साधना में खूब आनंद आना चाहिये और छोटे से छोटे काम करने में भी उसे पूजा का स्वरूप बनाकर भरपूर आनंद लेना चाहिये। इस भीतर के आनंद की रक्षा करनी पड़ती है। इतना करते हुए भी इच्छाओं की यदि पूर्ति नहीं होती तो क्रोध आता है और सब कुछ कमाई नष्ट हो जाती है। हाँ, ऐसे में ही गुरु देखभाल करता है। वह देखभाल तभी करेगा जब आप उसके आदेश का पालन करेंगे।

आज कल का पढ़ा लिखा व्यक्ति इसको नहीं समझता। वह कहता है क्या ज़रूरत है कि गुरु धारण करें। पर गुरु की शरण लेने की ज़रूरत है। गुरु सच्चा संत सत्पुरुष होना चाहिये। वह अंदर बाहर सत् ही सत् हो। जो भी व्यक्ति उसके पास बैठ जाये उसे ही शांति का अनुभव हो। गुरु महाराज कहा करते थे कि जहाँ सच्चे संत कम है वहाँ जिज्ञासु भी बहुत नहीं हैं। सच्चा संत तो कोई हज़ार-बारह सौ वर्ष बाद आता है। यदि कोई ऐसा सिद्धपुरुष न मिले तो किसी गुरुमुख व्यक्ति

Scanned by CamScanner

की शरण ले लें। यदि सच्चा संत मिल जाये तो उसके चरणों में बैठ जाना चाहिये, कोई साधन करने की ज़रूरत नहीं है। ऐसे संत के पास जाकर कुछ नहीं माँगना चाहिये। हमें तो आत्मा का सुख चाहिये। वो तो कोई मांगता नहीं सब संसार की वस्तुएँ माँगते हैं। केवल उसकी सेवा करनी चाहिये। दीनता से, सरलता से, नम्रता से बैठना चाहिये। बच्चे की भांति सरलता हो। माँ को और परमात्मा को सरलता प्रिय है। अपने मन की होशियारी को एक तरफ़ रख दें।

भगवान बुद्ध कहते हैं कि अपनी इच्छाओं का त्याग करो। पूज्य गुरुदेव वही बात कह रहे हैं जो भगवान कृष्ण ने या बुद्ध भगवान ने कही है कि ऐसे व्यक्ति की शरण में जाकर कुछ नहीं माँगना चहिये। लोग साधना में तो बैठते हैं पर अपने आप को समर्पण नहीं करते। जब आत्मिक प्रसादी मिल जाती है तो मन में शान्ति आ जाती है। ऐसे व्यक्ति के भीतर इस संत की जो प्रसादी मिलेगी उसको ही 'नाम' कहते हैं। जब यह मिल जाती है तो साधक अनुभव करता है कि उसमें शान्ति है, परमात्मा का स्वरूप है।

अपने अतीत को भूलना और संस्कारों से मुक्त हो जाना – इससे सरल साधन कोई नहीं है। तो इस खोज में रहिये कि कोई ऐसा महापुरुष मिल जाये। संत आत्मा के स्थान पर होता है। सूर्य की तरह उसके प्रकाश की रश्मियाँ अप्रयास ही चारों ओर फैलती रहती हैं। किसी महापुरुष के पास जायें तो भीतर का स्नान करके यानी निर्मल होकर जायें।

Scanned by CamScanner

संत न देना चाहे, ऐसा नहीं हो सकता, उससे तो आत्मिक प्राप्ति होगी ही। इसलिये ऐसे महापुरुष के पास जावें तो विनम्र होकर समर्पण कर दें, कोई मन की दीवार न खड़ी करें। जब व्यक्ति ऐसा बन कर जाता है तो अप्रयास ही उसको आत्मिक प्रसादी प्राप्त होती है। याद रहे कि जब भी ऐसे सतपुरुष के पास जायें तो निर्मल चित्त लेकर जायें।

जहाँ हम अपना प्रयास करते हैं वहाँ बाधा पड़ जाती है। जैसे कलाकार के सामने पत्थर पड़ा होता है तो वह पत्थर कोई प्रयास नहीं करता। वह कलाकार को पूर्णतः समर्पित है। कलाकार उसमें से कैसी सून्दर मूर्ति का गठन करता है। पत्थर को कुछ नही करना पड़ता।

तो जब-जब हो सके संत के पास जायें और श्रद्धा लेकर जायें। शुद्ध निर्मल चित्त होकर जाये। कोई मन, बुद्धि, विचार की दीवार न खड़ी करें। वैसे यह भी सत्य है कि उनके सामने रहने से मलिन भी निर्मल बन जाता है। आप महापुरुषों की जीवनी पढ़कर देखिये, विशेषकर संतमत के संतों की। और यह भी ठीक है कि संतों के उत्तराधिकारियों ने उतनी मेहनत नहीं की जितनी कि सामान्य व्यक्ति करता है।

यह विद्या एक से दूसरे के पास - अर्थात गुरु के प्रेम द्वारा शिष्य पर जाती है यदि वह भी पूर्ण आस्थापूर्वक उनकी सेवा में भेट करने के लिए सेवा का भाव, नम्रता और श्रद्धा ले जायें। हार्दिक समर्पण का भाव लेकर जायें, तो विश्वास रखें कि आप ईश्वरीय कृपा से मालामाल होकर आयेंगे - खाली नहीं लौटेंगे।

Scanned by CamScanner

गुरु ने योग्य शिष्य का उपदेश दिया कि यही साधना करें। इसमें तद्रूपता प्राप्त करें। सिद्धि हो जायेगी। साधना करते करते सिद्धि आ जायेगी। सबमें एक ही अनुभूति होगी। कहने में थोड़ा अन्तर आ जाता है। होगा ऐसी अनुभूति के बाद हमारी भीतर की स्थिति क्या होगी यह मालूम होगा :-

'पेख पेख नानक बिगसाई।'

यानि व्यक्ति विस्माद में चला जाता है। हैरान होगा कि प्रकृति कितनी सुन्दर है। परमात्मा की कैसी लीला है। प्रभु कैसा सुन्दर है। रोम-रोम से परमात्मा के प्रति श्रद्धा के भाव उत्पन्न होंगे। अभी तो हम केवल दार्शनिक जैसी बातें करते हैं। दर्शन भी अच्छी तरह समझ नहीं आया हैं, पर जब यह हमारे स्वभाव का अंग ही बन जायेगा तो हमसे अप्रयास ही ऐसी बातें होती रहेंगी।

ऐसे व्यक्ति को हर घड़ी आनंद आता है। वह सब से संतुष्ट रहता है। अपने आप से संतुष्ट है, किसी से राग द्वेष भी नहीं रखता है। सबको ही अपना समझता है। सब में परमात्मा की लीला देखता है और पुलकित होता रहता है। गोपियों के हृदय में जो अनुभव था वही जिज्ञासु के हृदय में उत्पन्न हो जाता है।

हम कहते हैं कि साहब शान्ति नहीं मिलती। शान्ति तब तक नहीं मिलेगी जब तक हम इन दो तीन बातों का पालन नहीं करेंगे। इस अभ्यास के सुखद परिणाम या फल पाने में तो समय लगता है, पर अभ्यास करना होता है। मन से, भीतर में भरे सारे राग-द्वेष निकालने होते हैं किसी के प्रति बुरी भावना मन में नहीं रहनी चाहिये।

Scanned by CamScanner

हज़रत ईसा कहते हैं 'ईश्वर का एक ही सबसे विशेष गुण है : क्षमा। उसका बिरद है कि वो सबको क्षमा करता है।' प्रश्न उठता है कि जो पाप करता है क्या उसको फल नहीं मिलेगा - तो फल तो अवश्य मिलेगा। जो मन के स्थान पर हैं उन्हें पाप व पुण्य दोनों के प्रभाव से फल को भुगतना पड़ता है, परन्तु जो हर अवस्था में समान संतुष्टि का आभास करते हैं वही इन दोनों से ऊपर हैं। उनके लिए दोनों ही तुच्छ हैं, तृण के समान हैं। उनको तो आत्मा के आनंद की हरदम खोज रहती है। उनके यहां किसी के प्रति लगाव या वैर का भाव नहीं है। मेरा-तेरापन नहीं, सब में केवल परमात्मा की ही लीला है।

परमात्मा का विशेष गुण है। जहाँ प्रेम है वहाँ क्षमा और वहाँ सहनशक्ति भी आ ही जाती है। हम भी राग द्वेष से तभी छूट सकते हैं जब प्रेम को अपनाएँ। ये हज़रत ईसा के उपदेश हैं कि सब के साथ ऐसा प्रेम करें जैसा कि आप अपने साथ करते हैं। करते-करते आप आत्मा के समीपता पा जाते हैं। कोई व्यक्ति अपने आपको दुःख देन पसंद नहीं करता। सबसे प्रेम करना तभी होगा जब अपने जैसा ही सबको समझेंगे। संसार के प्रति राग-द्वेष होगा तो अशांति बनी रहेगी। शान्ति की, प्रेम की अनुभूति केवल आत्मा में है और वह अनुभूति केवल रागद्वेष छोड़ने के बाद ही संभव है। यहां जो कुछ हो रहा है साधक उससे संतुष्ट हो। इस सबमें परमात्मा की लीला, उसकी इच्छा समझकर उसकी लीला के दर्शन करते हुए उसी की मौज़ में मग्न होता रहें।

Scanned by CamScanner

करने में मदद मिलती है, पर उसके लिये समय लगता है। साधन उसके लिये भी यही है। पश्चाताप करते चले जायें और ईश्वर से प्रेम करें। मन में एक शून्यता (Vaccum) आ जाती है। उस शून्यता में भरने को कुछ चाहिये। यदि मन पश्चाताप से ख़ाली होने के साथ ही ईश्वर प्रेम से उसे नहीं भरता, परमात्मा से अनुराग नहीं करता, तो उस शून्य में अन्य कुछ भी समा जाता है।

संक्षेप में परमात्मा से प्रेम करें अनुराग द्वारा और संसार से वैराग करें पश्चाताप द्वारा। परमात्मा से अनुराग के लिये हर समय प्रार्थना करते रहना चाहिये। प्रार्थना और आराधना में अपार शक्ति है। इनसे Strong Wise Poswer (दृढ़ संकल्प) का सामर्थ्य भी प्राप्त होता है।

पुराने संस्कारो या वृत्तियों से निवृत होना कोई साधारण बात नहीं है। इसके लिये बार-बार पश्चाताप करना चाहिये। इसके साथ-साथ हमारा जीवन शुद्ध और पवित्र हो जाना चाहिये। जो पिछले बुरे कर्म अथवा पाप किये हैं उनके विचार साधनावस्था में अवश्य आयेंगे। इसलिये कबीर साहब ने फ़रमाया है कि, संसार में रहकर सर्वप्रथम राग और द्वेष दोनों से बचने का प्रयास करें। यह बड़ा कठिन है।

दूसरे साधन जो दार्शनिक बतलाते हैं वे यह है कि 'जागयक होकर' जीवन व्यतीत करना चाहिये। किसी की प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिये। प्रतिक्रिया शून्य अवस्था में भी नहीं होनी चाहिये। हम आँखों से देखकर, कानों से सुनकर, जुबान से खाने में, तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं, विचारों की भी तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं। इस प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप

Scanned by CamScanner

अंतर में विचारों का ताँता सा लग जाता है। मनुष्य उन विचारों को छोड़ न पाने से पागल सा हो जाता है। जितने अधिक विचार उठेंगे, संस्कार उतने अधिक दृढ़ होंगे। इसलिये मौन को अपनाये बिना संस्कार कभी समाप्त नहीं हो सकते। विचार शून्य मौन में रहने का प्रयास करना चाहिये।

प्रार्थना का परिणाम

प्रार्थना में बड़ा बल है। जो लोग रामेश्वराम् गये हैं वो जानते हैं कि भगवान् राम ने विशाल सागर के ऊपर पत्थरों से पुल बनावा दिया था जो साधारणतः असंभव बात है। परन्तु उन्होंने पुल बनाने से पहले भगवान शिव और समुद्र की प्रार्थना की। हमें प्रेरणा देने के लिये, स्वये पूजा–प्रार्थना करके ही उन्होंने यह आदर्श दिखाया कि प्रार्थना के बल पर हम कितना कुछ कर सकते हैं। उस समय उन्होंने भगवान के रूप में नहीं अपितु राम के रूप में प्रार्थना की और सागर पर पत्थरों का पुल बना दिया जाता है।

ऐसे ही महाराजा रणजीत सिंह फौज लेकर काबुल पर विजय प्राप्त करने जा रहे हैं, अटक के पास एक सागर समान गहरा दरिया आ जाता है। पानी बहुत गहरा तथा प्रवाह भी बहुत तेज़ है। उस समय पुल नहीं होते थे। महाराजा रणजीत सिंह की ईश्वर में दृढ़ आस्था थी। उन्होंने पहले पूजा पाठ किया तत्पश्चात् प्रार्थना की है और फिर अपने घोड़े पर सवार होकर अटक दरिया में कूद गये एवं पार पहुँच गये। पीछे–पीछे फौज भी उनका अनुसरण करते हुये दरिया पार कर गयी और उन्होंने काबुर पर विजय प्राप्त की।

Scanned by CamScanner

हाँ प्रार्थना से पहले अपने आराध्य या इष्ट देव में अटल विश्वास का होना अनिवार्य हैं क्योंकि ईश्वर में यदि पूर्ण विश्वास न हो तो प्रार्थना कैसी! भक्त प्रह्लाद का विश्वास देखिये। केवल एक बार थोड़ा सा घबराये हैं पर जब उन्हें अग्नि स्तम्भ का आलिंगन करने को कहा गया है, उस समय भी प्रार्थना की है तो प्रभु प्रकट हुए चीटीं के रूप में। उससे प्रेरणा मिली। दौड़ें दौड़े गये हैं और अग्नि स्तम्भ का आलिंगन कर लिया है।

प्रार्थना की सफलता के लिये कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :-

1. ईश्वर में पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि वो हमारे दुःखों की निवृति कर देंगे।

2. ऐसा अनुमान करना चाहिये कि, जिससे आप प्रार्थना कर रहे हैं आप उस इष्टदेव या गुरु के चरणों में बैठे हैं और वो आपकी प्रार्थना सुन रहे हैं।

3. प्रार्थना हृदय की गहराई से निकलनी चाहिये।

4. प्रार्थना उचित होनी चहिये। ऐसी नहीं कि सारा संसार मुझे मिल जाये, या जैसे मैं चाहता हूँ परमात्मा सारे काम वैसे ही करवा दें। इसका मतलब तो यह होगा कि परमात्मा हमारा नौकर हैं।

5. प्रार्थना करते हुये यह देखें कि हमारी आकांक्षा पूर्ति से कहीं दूसरे को तो दुख नहीं पहुंचेगा। तत्पश्चात ऐसी इच्छा जिसकी प्राप्ति से आपके साथ-साथ औरों को भी सुख मिलेगा उसके लिये ही प्रार्थना करें।

6. सर्वोत्तम प्रार्थना यह है : "हे प्रभु, संसार में सबका भला हो"

Scanned by CamScanner

संत कभी भी अपने लिये कुछ नहीं माँगता। सच्चा जिज्ञासु भी कुछ नहीं मांगता है - "मोको कछु न चहिये राम" उसकी यही सच्ची भावना रहती है। गुरु अर्जुनदेव जी के शब्दों में उसके उद्‌गार यही होते हैं कि-

"राज न चाहूँ, मुक्ति न चाहूँ, मन प्रीत चरन कमला रे"

अर्थात सच्चे भक्त को राजपाट नहीं चाहिये। यहाँ तक कि वह तो मुक्ति को भी तुच्छ समझता है। वो कहता है "मुझे केवल आपके चरण कमल की प्रीति प्रदान करें।' ऐसे भाव सिर्फ़ प्रार्थना के समय ही नहीं बल्कि सारा दिन हमारी दिनचर्या का एक अंग ही बने रहने चाहिये जिससे हमारे सारे कर्म भी इस प्रार्थना के के अनुरूप होने चाहिये।

ऐसी प्रार्थना से मन निर्मल हो जाता है और जब हम सबके भले के लिये प्रार्थना करते हैं तो भीतर से जो स्वार्थ का संस्कार है वह समाप्त हो जाता है। धीरे-धीरे लोभ, मोह, अहंकार आदि के संस्कार भी समाप्त होते जाते हैं एवं सच्ची दीनता व सच्ची सरलता आती जाती है।

दीनता एवं सरलता भी ऐसे गुण हैं जो परमात्मा के चरणों की ओर ले जाते हैं। शिशु की तरह सरलता होनी चाहिये, जिससे किसी के प्रति राग न हो, किसी के प्रति द्वेष न हो। बड़े होते ही सबके मन में राग-द्वेष पैदा हो जाते हैं। इससे निवृत्ति तब ही संभव है जब मनुष्य को प्रार्थना द्वारा सच्चे प्रेम की प्राप्ति हो जाये।

सच्चा प्रेम क्या है ? प्रेम में पवित्रता है, उदारता है, प्रेम में एकता है। प्रेम में विभाजन नहीं होता है। परमात्मा

Scanned by CamScanner

का दूसरा नाम हीं प्रेम है। हम परमात्मा से प्रेम करते हैं, और भाईयों से या संसार के अन्य लोगों से द्वेष करते हैं, यह तो कोई प्रेम साधना नहीं है। प्रेम में तो सब अवगुण समाप्त होकर एकमात्र परमात्मा ही रह जाता है। वहाँ न मन रहता है न बुद्धि की चतुराई रहती है। फ़क़त 'तू ही तू है।' आगे चलकर यह भी ख़त्म हो जाता है। प्रेमी केवल कभी–कभी दूसरों को समझाने हेतु कुछ शब्द बोल देता है, अन्यथा इस अवस्था में उसका मन, इन्द्रियाँ, वृत्तियां सब शांत हो जाते हैं, केवल प्रकाशमान आत्मा ही रह जाती है।

इस शांत भाव की सुन्दर कल्पना को साकार रूप में दिखाने के लिये कवियों, चित्रकारों, व मूर्तिकारों ने भगवान शंकर तथा अन्य देवी–देवता अथवा गौतम बुद्ध के भव्य स्वरूप को कैसी शांत गम्भीर एवं प्रसन्न मुद्रा में बैठी मूतियों या चित्रों द्वारा प्रस्तुत किया है। जब प्रेम में डूबे साधक में किसी प्रकार की वेदना–संवेदना या अन्य कोई भी भाव तरंग नहीं रहती है तो शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, आत्मा, सब परमात्मा में लय हो जाते हैं। शरीर का बोझ, मन का बोझ बुद्धि की चतुराई आत्मा और की पृथकता, सब ही समाप्त हो जाते हैं।

ऐसी अवस्था में कोई अवरोध अथवा कोई प्रयास नहीं होता और तब सच्चा योग होता है, सच्ची मौन साधना यहीं से प्रारम्भ होती है। इस प्रेमाग्नि में सारे संस्कार स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। इसी स्थिति को लाने के सफल सहायक होते हैं : लिये ये दो उपाय प्रायश्चित और प्रार्थना।

Scanned by CamScanner

प्रभु प्रेम पाने के कुछ साधन

ईश्वर के प्यार प्राप्त करने के लिये महापुरुषों ने कई साधन बताये हैं। कबीर साहब ने अपनी बानी में फ़रमाया है कि' तैरने को दीनता और डूबने को अभिमान काफ़ी हैं। अर्थात इस भव सागर में तरने अर्थात प्रभु प्राप्ति के लिये दीनता आनी चाहिए और इसी भवसागर के दल-दल में फंसाये रखने के लिये अभिमान हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। सच्ची दीनता अपनायें ; अपने आप को कुछ नहीं समझें। उन्हीं के शब्दों में

कबीर सबसे हम बुरे, हमसे बुरा ना कोय ?
जो ऐसा कर बूझिया, मीत हमारा सोय।

कबीर साहब हमारा प्रतीक बनकर स्वयं से कहते है कि हम सबसे बुरे हैं और हमारे अतिरिक्त 'हम तज और भलो सब कोय।' इतना महान संत अपने आपको कह रहा है कि मेरे को छोड़कर संसार जितना है वो सब भला है, मेरे जैसा बुरा कोई नहीं है। और हमें ज़रा सी कोई आलोचना की बात कह देता है तो आपे से बाहर हो जाते हैं - कौन होता है यह बातें कहने वाला ? ऐसी प्रतिक्रिया में किसको घाव लगता है, किसको पीड़ा होती है? अहंकार को। मैं और यह मेरापन ! कबीर साहब में मैं और मेरापन नहीं रहा। वो आत्म स्थिति पर खड़े होकर कह रहे हैं- 'हम तज और भलो सब कोय।' वो परमात्मा के दर्शन कण-कण में करते हैं। वो परमात्मा को देख रहे हैं कि प्रत्येक रूप में परमात्मा तो है।

Scanned by CamScanner

जब परमात्मा सर्वव्यापक है, सबमें विराजमान है, तो कोई व्यक्ति बुरा या भला कैसे हो सकता है, सभी में तो परमात्मा है! यह बुराई भलाई कौन उत्पन्न करता है। द्वन्द्व, द्वेष, ईर्ष्या आदि कौन उत्पन्न करता है? यह संसार में आपस में झगड़े कौन उत्पन्न करता है ? यह अहंकार ही है जिसको चोट लगती है। मन बुराई व भलाई दोनों में फंस जाता है। राग और द्वेष दोनों में यह मन फंस जाता है।

कबीर साहब इसीलिये कहते हैं कण-कण में वो परमात्मा व्यापक है। तो कौन बुरा है कौन भला है - 'ना कोई बैरी नाहि बेगाना'। कोई दुश्मन तो हैं ही नहीं, कोई बेगाना तो है हीं नहीं। सभी तो हमारे अपने हैं। अपने के अर्थ हैं कि जो आत्मा मेरे में हैं वही आत्मा उसमें भी है। इसलिये कही भिन्नता है ही नहीं। जहां एकता है आत्मा की वहां बैरी या बेगाना, अपने और पराये, शत्रु या मित्र किसके ?

कबीर साहब कहते हैं - 'जिन ऐसा कर बूझिया मीत हमारा सोई।' जिस व्यक्ति ने ऐसा विश्वास कर लिया कि सबमें ही परमात्मा हैं, वहीं हमारा मित्र है। गुरुदेव भी, फरमाते रहे कि जिसके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया, अर्थात सच्चा आत्मिक प्रेम उत्पन्न हो गया उसी में सच्ची दीनता उत्पन्न हो सकती है। कबीर साहब जैसे संत ही ऐसे शब्द कह सकते हैं। 'हम तो अपने आपको कहते हैं - हम बहुत अच्छे हैं बाकी दुनिया हमसे हीन है। कोई ऐसा व्यक्ति है जो अपने आप से कहता है कि नहीं साहब मै आपसे छोटा हूँ? प्रत्येक व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है। वो जो दीनता उसके हृदय में

Scanned by CamScanner

नहीं होती पर जिसे है में दिखता रहता जो व्यवहार है, वो जो दीनता नहीं है, बनावटी होती हैं। सच्ची दीनता तो केवल प्रेम में हैं, आत्मा में है।

हजरत ईसा भी ऐसा ही कहते हैं। जैसे हमारे यहाँ यम नियम हैं, उसी प्रकार उनके यहाँ भी हजरत मूसा ने आचरण के बारे में दस नियम (Ten Commandments) बनाये थे। परन्तु हजरत ईसा ने केवल दो नियमों को अपनाया, एक तो यह कि परमात्मा को प्यार करो (Love God) और दूसरा पापी को भी क्षमा करो - जैसा कि उन्होंने स्वंय अपने फाँसी पर चढ़ाने वालों के लिये भी प्रभु से क्षमा करने की प्रार्थना करके दिखा दिया था। प्रेम परमात्मा से हो तो ऐसे जैसे मृग मरुस्थल में जल खोजने के लिये व्याकुल होता है उसी प्रकार जिज्ञासु को परमात्मा की खोज में अपने आपको खो देना चाहिये। उसके बगैर रह न सके। मछली सागर से बाहर आ जाती है तो प्राण दे देती है, इसी तरह परमात्मा के लिये तड़प होनी चाहिये कि दूसरे, अपने पड़ोसी के अर्थ यह हैं कि संसार में सभी के साथ प्रेम करो, चाहे वे आपसे घृणा करते हैं या आपसे स्नेह करते हैं। आप एक जैसा प्रेम करो। कोई आपको ईट मारता है, कोई आपसे शत्रुता करता है तो भी आप उसके मानसिक, शरीरिक, बौधिक, कर्मो की ओर ध्यान न देते हुए उसकी आत्मा को देखते हुए उसके साथ प्रेम करो। हजरत ईसा ने तो यहां तक कहा है कि यदि पूजा के स्थान पर कोई उपहार लाये हों और आपके मन में किसी के तनिक भी द्वेष की भावना मौजूद है तो अपना उपहार वापिस जे जाओ। जब

Scanned by CamScanner

तक कि मन में से यह द्वेष, घृणा आदि बुराइयों को न निकाल लो कोई भेट उपहार लेकर पुनः नहीं आना।

हम भी ले जाते हैं प्रसाद। हमारे यहाँ गुरु महाराज फ़रमाया करते थे कि प्रसाद में हम अपना मन लेकर जाते हैं। आपका मन निर्मल हो सकता है परन्तु जैसा हज़रत ईसा कहते हैं व गुरु महाराज फ़रमाया करते थे वो वैसा नहीं होता। इसीलिये हमारा उपहार ईश्वर के चरणों में स्वीकार नहीं होता। हमारे भक्ति मार्ग के सार रूप में दो ही साधन बतलाये गये है - ईश्वर से प्रेम और सब संसार की सेवा - दीनता के साथ सब में अपने प्रीतम का स्वरूप देखकर। कबीर साहब भी कह रहे हैं कि यदि भवसागर से पार उतरना है तो सच्ची दीनता को अपनाओ,अन्यथा अहंकार के गढ़े में फँसे हुए ही रह जाओगे।

प्रत्येक व्यक्ति अपने मन की जाँच कर सकता है। हम सब फँसे हुए हैं, और कारण है - हमारा अभिमान। ईश्वर ने हमें अपने जैसा बनाया है परन्तु इस मन ने अपना अलग साम्राज्य बनाकर अलग से खिचड़ी पकानी शुरु कर दी। हम जो बात करते हैं मैं मैं की कर जाते हैं। इस मैं को समझने की हमने कभी कोशिश नहीं की। एकान्त में बैठकर अपनी मैं के साथ बातचीत करके देखें कि ये मैं है क्या चीज़। यह बड़ा भारी रोग है। हम सब इसमें फँसे हुये हैं।

इससे मुक्त होना हमारे यहाँ का तप है। पूज्य लालाजी महाराज के पवित्र शब्दों में : औरों के यहां तप हो सकता है कि धूप में बैठकर, अग्नि जलाकर हठयोग की क्रियाएँ अपना

Scanned by CamScanner

कर तप करें। परन्तु हमारे यहां का तप यह है कि अपने मन को ढ़ीला करें, अपने अहंकार को क़ाबू में करें। लोग-बाग हमें लानतें दें, हमारी निंदा करें, अपमान करें तो भी हम प्रसन्नता से सहन करें। पर यह है बड़ा कठिन। बाबा फ़रीद कहते हैं कि, यदि कोई तुझे मुक्की मारे ता तू उँगली से भी मत छूना'। और जो तुमको दुख देते हैं या विरोध करते हैं उनके घर जाकर 'पैर तिनाँ के चुम्म।'

आप कहेंगे यह कैसी विचित्र लीला है कि एक आदमी हमें दुख दे व हम उसके घर जाकर उसके पाँव पकड़ें, उसके पाँव को चूमें। संत-सूफ़ियों के मतानुसार जो ऐसी साधना कर सकता है वही दीनता के भाव को समझ सकता है।

कबीर साहब का बारम्बार फ़रमाना है कि सच्ची दीनता यही है कि 'मेरा मुझमें कुछ नहीं।' यह शरीर भी मेरा नहीं, मन भी मेरा नहीं, धन भी मेरा नहीं। ये जितने संबंधी वगैरह हैं ये मेरे नहीं। कबीर साहब के उपदेश के अनुसार किसी से कोई लगाव नहीं कोई आसक्ति नहीं। बल्कि 'जो कुछ है सो तोर।' जिज्ञासु को अनासक्त होना होगा। पर हमारा शरीर, हमारा मन और बुद्धि की चतुराई बाधा डालती है। जब हम यह मान लेते हैं कि 'तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर' और अलहदा हो गये तो कौन अलहदा होगा ?...आत्मा।

अहंकार ख़त्म हो गया तो आत्मा एकता का व्यवहार करती है। आत्मा में दीनता हैं। आत्मा में प्रेम है, आत्मा में आनंद है, जीवन है, चेतना है। आत्मा में न जरा है, न रोग है, न मरण। यदि ऐसा सफल जीवन चाहिये तो सच्ची दीनता

Scanned by CamScanner

को अपनायें। साधना इसके लिये यही है कि मन को, जो अहंकार से जकड़ा हुआ है इसको वहाँ से निकाल कर प्रभू की या गुरु की चरणों की रज बन जायें। अपने आपको पूर्णरूप से मिटा दें। खाक बन जायें। तब जाकर दीनता की अनुभूति हो सकेगी।

अभ्यास के लिये, हर समय अपने मन की जांच करते रहना चाहिये। हमाने मन में बदले की भावना है, ईर्ष्या है। हरवक्त जलन रहती है तो ईश्वर तो बहुत दूर है। साधना का मतलब यही है कि स्वनिरीक्षण करते हुये, अपने अवगुणों को देखते हुये उनका त्याग करें। व्रत रखने का और तीर्थो पर जाने का भाव यही है। पहले भी लोग करते थे अब भी करते हैं। किसी चीज़ पर मन आसक्त होता था तो वो छोड़ आते थे परन्तु वो प्रथा बिगड़ते-बिगड़ते ऐसी हो गयी कि जो चीज़ अच्छी नहीं लगती वो छोड़ आये।

भीतर में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, तीन आदि के जितने अवगुण विकार हैं इनको धीरे-धीरे छोड़ने का प्रयास करें। गंगा जी पर या तीर्थो पर जाकर महापुरुषों के दर्शन होते हैं। वो कहते है - आये हो गंगास्नान करने तो बाहर का स्नान करते हुए भीतर की भी सफ़ाई करो।

हम गंगास्नान के महत्त्व को नहीं समझते। वहां जाते हैं, खाया-पिया, पानी के प्रवाह को देख लिया, तमाशे देखें। वहां की सुन्दरता देख कर मन एकाग्र भी हो जाता है। परन्तु गंगा के भाव को नहीं समझते। भगवान शिव की जटा से गंगा निकल रही है, उस ज्ञान की धारा में स्नान करना है। मन के मैल को धोना है एवं भीतर को पवित्र करना है। दृढ़ संकल्प करें कि अपनी बुरी आदतों को नहीं दोहरायेंगे। इनका त्याग

Scanned by CamScanner

करके लौटेंगे और निर्मल होकर पवित्रता का प्रसाद भी अपने साथ लाकर घर में और अपने इष्ट मित्रों को बाँटना है।

अभिमान, अहंकार व दीनता इन पर विचार किया करें - हमारे जीवन के हर कार्य में या व्यवहार में क्या अर्थ हैं अभिमान के, क्या अर्थ है दीनता के। हम कितने फँसे हुए हैं। अभिमान में, हमने कितनी दीनता अपनाई है, देखते रहें। यदि हम गंभीरता से अभिमान और दीनता पर विचार करेंगे और वास्तव में अपने दैनिक व्यवहार में अहंकार को त्याग कर, दीनता को अपना लेंगे तो विश्वास रखें कि गुरु महाराज की भी कृपा होगी। वे हमें अभिमान से मुक्त कराके सच्ची दीनता सिखा सकेंगे और हम भी भव सागर से तर जायेंगें। साधना में बैठते वक्त देखें कि अभिमान क्या करता है। शब्द बोलते वक्त देखें, और व्यवहार में देखें कि मन में द्वंद्व तो नहीं है। एकान्त में देखें किस प्रकार के विचार आ रहे है।

जो व्यक्ति अभिमानी होता है स्वयं तो विष पीता है पर औरों को भी उसकी 'प्रसादी' देता है। जिसके भीतर में सच्ची दीनता होती है वह स्वयं भी मग्न रहता है औरों को भी आनन्दित करता है। परमात्मा दीनों में हैं, उसे दीनता प्रिय है। जितने महापुरुष हुए हैं सबको दीनता प्रिय रही है। इसीलिये कबीर साहब ने अपने आपको स्त्री रूप मानकर ईश्वर की आराधना की है - 'मै तो अपने राम की बहुरिया'।

गुरुदेव आप सबको शक्ति दें, ईश्वर के प्रति सच्ची समर्पित नारी बनने के लिये प्रेरणा दें, जिससे कि आप दीन बनकर प्रभु का प्यार पाने के अधिकारी बन जायें।

Scanned by CamScanner

सभी में एक 'वही' रूप देखें

परमार्थ के कई रूप हैं। भिन्न-भिन्न महापुरुषों ने परमात्मा के रूप को, परमात्मा के गुणों को, परमात्मा के अस्तित्व को भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने संस्कार होते हैं। उन संस्कारों के अनुसार वह भक्ति, साधना द्वारा ईश्वर की ओर बढ़ता है - उसका तरीका पृथक-पृथक होता है। इसलिये गीता में भगवान कृष्ण ने दूसरे अध्याय में ज्ञान की शिक्षा दी है। अर्जुन विद्वान था, शास्त्रज्ञ और बुद्धिमान था, परन्तु ज्ञानी नहीं था। इसलिये जब जब ज्ञान की सांख्य दर्शन की बात उसे समझाई गई तो वह पूछता है भगवान से, "प्रभु, मुझे बताइये कि स्थितपज्ञ का व्यवहार कैसा होता है ?" भगवान ने एकात्मता का वर्णन किया है तो अर्जुन पूछता है "एकात्मता में रहकर अर्थात ईश्वर से तद्रूप हुआ उच्च कोटि का ज्ञानी संसार के साथ काम कैसे करता है ?"

अर्जुन के सामने कुरुक्षेत्र का मैदान था। उसके सामने चुनौती थी। लाखों आदमी खड़े थे एक दूसरे का वध करने के लिये। वह उनको देखकर कहता है कि "ज्ञानी पुरुष वहाँ जाकर कैसे लड़ाई में लड़ता होगा ?" भगवान् उसे समझाते है। कि वह व्यक्ति सब परिस्थितियों में सम अवस्था में रहता है; दुःख आ जायें तो विक्षिप्त नहीं होता, सुख आ जाये तो ज़्यादा फूलता नहीं; वह सामान्य भाव से एक रस, रहता है। हानि-लाभ, सर्दी-गर्मी, दुख-सुख उसके जीवन में कोई अन्तर नहीं लाते। अर्जुन प्रश्न किये जा रहा है और भगवान इतने दयालु हैं कि वे उत्तर दिये जा रहे हैं।

Scanned by CamScanner

भगवान ने उसे ईश्वर की प्राप्ति के कई साधन बताये। पहले ज्ञान बताया हैं। फिर दूसरे अध्याय में सांख्य बताया है। फिर तीसरे,चौथे, पाचवें में कर्म ले लिया है। हमारे शास्त्रों में दो मुख्य साधन हैं। एक ज्ञान का और एक कर्म का। कर्म का मतलब यह है कि कर्म-साधना से भी मुक्ति हो सकती है। जो व्यक्ति सत्कर्म करे, पर शास्त्रानुसार करे, गुरु के आदेशानुसार करे किन्तु कर्म के फल के साथ उसका बंधन न रखे। कर्म करे तो धर्मानुसार समाज के हित के लिये निस्वार्थ होकर यज्ञ की भाँति करें उसका जो फल हों, भला या बुरा उससे विक्षिप्त न हो। अच्छा हो जाये आशानुसार तब भी उसमें अहंकार नहीं आना चाहिये और यदि आशा के प्रतिकूल हो जाये तो निराशा नहीं होनी चाहिये। यह बहुत कठिन है, कोई व्यक्ति काम नहीं करता है बिना यह सोचे हुये कि इसका फल अमुक होगा। वह हमेशा ख्याल रखता है कि जो भी मैं करूं उसका फल मेरी आशा के अनुकूल हो।

शास्त्र कहते हैं कि व्यक्ति या तो ज्ञान पद्धति को या कर्म योग आदि को। दोनों मे से अगर कोई प्रणाली नहीं अपनाता तो उसको शास्त्रों में 'राक्षस' कहा है। वास्तविक ज्ञान यही है कि जितनी भी साधनाएँ बनती हैं - ज्ञान की, कर्म की, भक्ति की, योग की या सन्यास की, - सबका सार यही सिद्ध करता है कि साधक साधना करते करते उस आयाम में पहुंचता है जहाँ वह अनुभव करता है कि वह और परमात्मा एक हैं। वास्तव में परमात्मा और संसार सब एक हैं। इसी को सत् कहते है। सत्नाम का नाम भी सत् है। शास्त्रों में बहुत उदाहरण हैं। यहाँ दो तीन उदाहरण दिये जाते हैं कि भगवान स्वयँ ही रसिया हैं। स्वयँ ही रस है और स्वयं ही रस पान करते हैं, रस लेते हैं। यह प्रत्येक व्यक्ति की समझ में नहीं

Scanned by CamScanner

आता कि भगवान स्वयँ ही रस हैं, और रसास्वादन भी स्वयँ करते हैं, यह क्या लीला है ? मछली भी आप हैं, मछली को पकड़ा जाता है वह भी प्रभु आप ही करवाते हैं। आप ही कर्त्ता यानी कर्म करने वाले भी आप हैं और जो किया वह भी आप हैं और जिस पर क्रिया करी जाती है वह भी आप हैं। कैसी अद्‌भूत लीला है यह!

साधना करते करते व्यक्ति सुषुप्ति की दशा में पहुचंता है। जैसे रोज़ ही आपको यह अनुभव होता है कि गाढ़ निद्रा में कोई भी विचार नहीं होता। कुछ देर में आप उठते हैं तो कहते हैं कि आज आपको बड़ी सुखद नींद आई, बहुत आनंद आया। इसी प्रकार व्यक्ति साधना करते-करते निर्विचार हो जाता है तथा उस स्थान पर जहाँ एकता है, वह वहाँ पहुंच जाता है। परन्तु सावधान रहें कि कभी-कभी यह सुषुप्ति जड़ता बन जाती है। इस अवस्था में मूर्ख व्यक्ति भी सुखी रहता है और ज्ञानी भी है पर बीच के जो लोग हैं, खास कर राजसी वृत्ति वाले, वह दुखी रहते हैं, अशान्त रहते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति यही कहता है कि हमारा मन नहीं लगता, मन स्थिर नहीं रहता। इतने साल हो गये अशान्ति बनी हुई है, शान्ति मिलती नहीं। उसका कारण है कि न तो उन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया, न ही उनमें भक्ति है। स्पष्ट कहें तो उन्हें बुरा लगता हैं। जिसको ज्ञान की प्राप्ति हो गई है वहाँ तो एकता का आनंद मौजूद रहता है - परमात्मा व आत्मा एक हैं। अशान्ति वहाँ होती है जहाँ एक से अधिक व्यक्ति हों। जहाँ दो होंगें वहाँ अशान्ति और राग द्वेष स्वभाविक है - जब तक दोनों ज्ञानी न हों।

Scanned by CamScanner

हम देखते हैं कि परिवार में स्त्री पुरुष खामखाही में छोटी-छोटी बातों पर लड़ पड़ते हैं। कभी एक दिन कुछ खोटी खरी बात हो जाये तो महीनों सुलह सफ़ाई नहीं होती। क्या ऐसे किया जाता है एक दूसरे को स्नेह? और उनके मन में रागद्वेष कितना है कि भाई-भाई में एकता की अनुभूति नहीं है। माता-पिता में बच्चों के साथ एकता नहीं हैं, एक दूसरे के प्रति राग द्वेष की भावना रखते हैं।

यह भगवान की लीला नहीं है यह मनुष्य की अपनी बनाई हुई है। भगवान ने तो एकता दी है - आत्मा दी है जो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर में हैं और वही आनंद का स्त्रोत भी प्रत्येक व्यक्ति में है। परन्तु वह अपने अहंकार के कारण उस स्त्रोत तक पहुँच नहीं पाता। इसलिये गुरु महाराज ने कहा है कि, "जहाँ अहंकार है वहाँ न तो ईश्वर का प्रेम मिल सकता है, न संसार के सुख मिल सकते हैं, न सच्चा नाम मिल सकता है। वहाँ न ही सच्ची भक्ति ठहर सकती है और न ही सच्चा, ज्ञान।

तो यह 'सुहागन' स्थिति बतलाई है गुरु महाराज ने। यह वह स्थिति है जहां साधक और सिद्ध यानी परमात्मा और साधक दोनों एक हैं। सुषुप्ति में यदि कोई महापुरुष नज़र आता है तो उसकी सहायता मिल जाती है।वह रास्ता देखे हुए होता है तो साधक को इस अंधकार से (सुषुप्ति में होश नहीं होता) निकाल देता है। सुषुप्ति कोई उत्तम अवस्था नहीं है। यह तब उत्तम अवस्था बनती है जब इसके साथ में ईश्वर के भी गुण होंगे। बिना गुणों के भक्ति नहीं हो सकती। इसका ये अर्थ है कि कोई भी साधना नहीं हो सकती। ईश्वर की प्राप्ति का

Scanned by CamScanner

कोई भी रास्ता अपनायें – पर यदि सद्गुणों को नहीं अपनायेंगे तो किसी प्रकार की पद्धति अपना लें – आपको सफलता नहीं मिलेंगी, भक्ति नहीं मिलेगी। भक्ति का अर्थ यह नहीं हैं कि किसी तस्वीर की पूजा करो।

कोई भी साधना करो, सद्गुणों को तो अपनाना ही होगा। यह मानों नींव है। वैसे भी देख लीजिये जो व्यक्ति सद्व्यवहार करता है, जिसके हृदय में सद्विचार उठते हैं और सद्गुणों को अपनाता है तो उसके भीतर में शान्ति उत्पन्न हो जाती है। इसीलिये भगवान कृष्ण गीता के बारहवें अध्याय में अपने भक्त के लिए गुणों के लक्षण बताते हैं और कहते हैं कि मुझे वह भक्त प्रिय हैं जिनमें ऐसे गुण हैं। यहाँ भक्त के अर्थ हैं साधक के जिसके लिये बहुत से गुण भगवान ने बताये हैं – तेरहवें श्लोक से लेकर बीसवें श्लोक तक। तेरहवें श्लोक में ही भगवान ने बहुत कुछ बता दिया है जिसमे सबसे पहला सद्गुण है – 'अद्वेषता' अर्थात उसके मन में किसी के प्रति भी तनिक भी द्वेष की भावना न हो। शत्रु या विरोध करने वाले के प्रति भी द्वेष–भावना न रहे।

हम जो रोज़ अख़बार पढ़ते है हमारे भीतर में जैसी भावना होती है उसी के अनुसार हम अख़वार पढ़ते हैं। जो सूचना हमारी भावना के अनुकूल होती है हमें खुशी होती है और जो घटना हमारी भावनाओं के प्रतिकूल होती है उससे दुःख होता है। राग या रोष उत्पन्न हो जाता है। जबकि भगवान पहला ही गुण जो अपने भक्त में देखना चाहते हैं वो हैं – 'अद्वेषता' अर्थात किसी से द्वेष न होना।

इसी श्लोक में अन्तिम गुण बताया है 'क्षमा' का। व्यक्ति क्षमाशील हो पर क्षमा ऐसे नहीं कि अपने बेटे और

Scanned by CamScanner

घरवाली को क्षमा कर दें। हजरत ईसा तो कहते है कि जो दुख दे उसे क्षमा करो क्योंकि परमात्मा का मुख्य गुण भी क्षमा है। और साधक को बताते हैं कि Seventy time seven' यानी यदि हजार बार भी क्षमा करनी पड़े तो भी किये जाओ। तुम्हारा स्वभाव ऐसा होना चाहिए – द्वेष या बदले की भावना का नहीं।

ऐसी ही क्षमा का एक और उदाहरण है। स्वामी रामानुज जी गंगा स्नान करने आते हैं एक पठान भी घाट की सीढ़ियों के ऊपर आकर बैठा हुआ था। वह स्वामी जी से नफ़रत करता था। जब रामानुज जी स्नान करके सीढ़ियों पर चढ़कर आरहे थे तो पठान उनपर थूक देता है। स्वामी जी पुनः गंगा स्नान करके कपड़े बदलते हैं और लौटते हैं तो पठान फिर थूक देता है। इसी प्रकार ये शरारत बार–बार होने पर भी रामानुज जी को क्रोध नहीं आया, न उस जनूनी पठान के प्रति कोई बुरी भावना ही प्रकट की।

अंत में पठान को अपनी करनी पर लज्जा आई और आखिर उनके चरणों में जा पड़ा है। रामानुज जी तो दुष्ट पठान में भी उसी एक आत्मा–परमात्मा का दर्शन करते रहे।

ऐसा होता है – क्षमा की उदारता का गुण और उसको अपनाने का सच्चा रूप। वास्तव में क्षमा के गुण द्वारा ही उदारता, सहनशीलता एवं द्वेष न होने के गुण भी साथ–साथ आते जाते हैं। यही गुण भगवान के बताये साधक की उन्नित में सहायक होते हैं। क्योंकि इन गुणों के द्वारा ही वह दुई के विचार पर विजय प्राप्त करके केवल प्रभु के स्वरूप का आनंद ले सकता है।

Scanned by CamScanner

'नवयुग' की पूर्व संध्या पर विश्वशांति का सामयिक संदेश

बीसवीं शताब्दी के हमारे रामाश्रम सत्संग के अंतिम वार्षिक भण्डारा समारोह, दश्हरा और दिवाली के त्योहार एवं गुरु नानकदेव, वाल्मीकि तथा गीता जयंती और बड़े दिन जैसे सुअवसरो पर हम सबने एक दूसरे को बधाई एवं हार्दिक शुभकामनाएं प्रदान की थीं। शीघ्र ही नववर्ष सन् 2000 ई. और 21वीं शताब्दी के साथ एक नये सहस्त्राब्द युग का शुभारंभ होने वाला है। ऐसे विशेष समय पर सबको - समस्त विश्व के प्राणियों को कल्याण और प्रगति की मंगल कामनाओं की और भी अधिक आवश्यकता है।

कालचक्र की इस ऐतिहासिक घड़ी में आज की वर्त्तमान स्थिति को देखा जाये तो सम्पूर्ण विश्व में चारों ओर अशांति, अभाव, अन्याय, अनाचार, असमानता और आतंकवाद का बोलबाला है। हर रूप में अर्थात व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय या विश्व के राजनैतिक संदर्भ में आम आदमी दुखी, बेचैन, अतृप्त, अशांत और आशंकित है।

कुछ स्वार्थी शक्तियों और व्यक्तियों की भोग लिप्सा एवं स्वार्थी वृत्तियों से जीना दूभर और भयाक्रांत है। खतरा यहां तक बढ़ गया है कि अणु-युग की संहारक शक्ति से किसी एक नेता की ग़लती या उद्दंडता से यदि विश्वयुद्ध छिड़ गया तो संसार का सर्वनाश भी हो सकता है।

उधर, मानव - कल्याण के लिए दैवी-प्रेरणा से संचालित विविध रूपों में अनेक 'पुण्य प्रयास' भी बराबर चल रहे हैं। जगह-जगह पर बड़ी-छोटी सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं द्वारा अपने-अपने ढंग से, लाखों करोड़ों लोग

Scanned by CamScanner

भगवत-नाम-जप-यज्ञ जैसे विराट अनुष्ठान करने में जुटे हुए हैं - जिनमें प्रभु से प्रार्थना की जा रही है कि विश्व में शान्ति बनी रहे और मानव जीवन अधिक आनंदमय हो।

देवासुर संग्राम जैसी वर्त्तमान परिस्थिति में एक ओर तो भौतिक जीवन के लिए अनिवार्य जल, ऊर्जा आदि के स्त्रोतों एवं संसाधनों की कमी होती जा रही है। दूसरी ओर, भूख, ग़रीबी, बेकारी और महामारी तथा भूकंप, अति-वर्षा, बाढ़-तुफान (चक्रवात) आदि प्राकृतिक प्रकोपों के कारण जनसंख्या के विनाश की सम्भावना भी प्रबल होती जा रही है। ....आणविक शस्त्रों द्वारा महाप्रलय का भयावह संकट तो है ही।

इन सभी भयंकर उथल-पुथल की अभूतपूर्व घटनाओं के बारे में देश-विदेश के मनीषी विचारकों, तकनीकी विशेषज्ञों एवं भविष्यवेत्ता चिन्तकों ने भी अपना आकलन और संकेत दिया है। साथ ही उनके विद्वत् निष्कर्ष में एक आशा की किरण भी मौजूद है जिसमें विश्व को विनाश के कगार से बचाने के लिये - "सत्यमेव जयते" सिद्धांत के अनुसार - आध्यात्मिक शक्तियों की विजय का स्पष्ट उल्लेख है।

...और इस सुन्दर आशापूर्ण भावी परिवर्तन के सूत्रधार के रूप में भारत के नेतृत्त्व की ओर इंगित किया गया है।

अतः इस संक्रमणकाल में जबकि सारा संसार अपने-अपने क्षेत्र में इस नये युग के स्वागत की तैयारियां कर रहा है, आइये, हम भी अपनी सीमित शक्ति और अकिंचन प्रयास द्वारा इस रचनात्मक दिशा में यथाशक्ति योगदान देकर अपना कर्त्तव्य पालन करें।

हमारे पास तो पूज्य गुरुदेव की दी हुई 'नाम-मंत्र' के जाप की अनुपम निधि ही एकमात्र शक्ति है। उसी अनमोल नामजप की अपार सूक्ष्म शक्ति का संचय और संवर्द्धन, बिना समय खोए हर पल करते जायें। यही समय की पुकार है और अगामी 'नवयुग' की पूर्व संध्या पर यही मेरी प्रार्थना एवं संदेश है।

- करतार सिंह,

अध्यक्ष आचार्य, रामाश्रम सत्संग, गाजियाबाद

Scanned by CamScanner

रामाश्रम सत्संग के अधिष्ठाता
परमपूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज
द्वारा निर्देशित ईश्वर को पाने का निश्चित साधन

जिक्र ख़फी का जाप (दिल का जाप) किया करें।
नाजिन्स ग़ैर आदमी और ग़ैर सौहबत के नक़्शों से दिल साफ़ करें।
परमात्मा के सिवाय किसी तरफ़ तवज्जो न करें।
यकसूई (एकाग्रता) के साथ दिल को हाज़िर रखने का पक्का इरादा करें।
सत् और मालिक की तरफ़ उन्सियत और लगाव हासिल करें।
अपने आप को मेट कर उसी में महब और लय हो जावें।
इसी काम को करने में अपने आप को मिटा दें।
असल पद पर पहुंचने का सबसे
ज़्यादा नज़दीकी रास्ता और
यक़ीनी ज़रिया है।

Scanned by CamScanner

रामाश्रम सत्संग के आध्यात्मिक प्रकाशन

1.	फ़क़ीरों की सात मंज़िलें (संत सप्त-दर्शन)	रुपये	6.00
2.	जीवन चरित्र : पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज	"	10.00
3	सवाने उमरी : जीवनी पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज	"	10.00
4-5	अमृतरस (भाग 1 व 2) प्रत्येक	"	10.00
6-8	**Discourses on Hindu Spiritual Culture - by Rev. Dr. A. K. Banerji (Parts 1,2 & 3 each)**	"	50.00
9	गुरु शिष्य सम्वाद	"	6.00
10-15	संत वचन (भाग 1 से 6) प्रत्येक	"	6.00
16.	संत वचन (भाग 7)	"	10.00
17-18	नवनीत (भाग 1 व 2)	"	5.00
19.	अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय	"	6.00
20.	घटमार्ग	"	6.00
21.	साधन चतुष्टय	"	2.00
22-24	संत प्रसादी (भाग 1 से 3) प्रत्येक	"	6.00
25-26	संत प्रसादी (भाग 4 व 5) प्रत्येक	"	7.00
27.	संत प्रसादी (भाग-6)	"	10.00
28.	आराधना (सत्संग की प्रचलित प्रार्थनाएं)	"	5.00
29	भजन मंजूषा (पचास संत-भक्त कवियों की रचनायें)	"	8.00
30.	भावांजलि (पू. डॉ श्रीकृष्णलाल जी की जन्मशती पर)	"	15.00
31.	प्रेम का सूर्य(पू. डॉ श्रीकृष्णलाल जी की जन्मशती पर)	"	17.00

प्राप्ति स्थान : भण्डारा समारोहों में एवं

1) मैनेजर, राम संदेश, 9 रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड, गाज़ियाबाद (उ0प्र0)
2) सम्पादक, राम संदेश, 2-बी, नीलगिरि-3, सैक्टर-34, नौएडा (उत्तर प्रदेश)

Scanned by CamScanner